ांस्कृतिक कहानिया

भाग ६

सुदर्शनसिंह चक्र

सांस्कृतिक कहानियाँ

[भाग - ६]

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवासंस्थान
मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान
प्रकाशन-तिथि	कार्तिक पूर्णिमा, वि. सं. २०३५ १४ नवम्बर, १९७८
प्रथम संस्करण	५००० प्रतियाँ
मुद्रक	राधा प्रेस, गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१

SANSKRITIK KAHANIYAN—Part IX

—Sudarshan Singh 'Chakra'

मूल्य — दो रुपया मात्र

प्राक्कथन

अनेक वर्षों तक 'कल्याण' (गोरखपुर) में मेरी कहानियाँ निकलती रहीं हैं। बहुत लोगोंका आग्रह था कि इन्हें संकलित कर दिया जाय। यह संकलन अब हो सका है और श्रीकृष्ण-जन्मस्थान प्रकाशनसे 'सांस्कृतिक कहानियाँ' नामसे अनेक भागोंमें निकल रहा है।

इस संग्रहमें 'कल्याण' में निकली कहानियाँ तो हैं ही, अन्यत्र छपी कहानियाँ भी हैं।

मैंने कहानी लिखना ही प्रारम्भ किया किसी तथ्यको समझानेके लिए। धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक विषयोंमें लेखोंके द्वारा जिन्हें समझाया जाता है, उन्हें मैंने कहानी द्वारा समझानेका प्रयत्न किया है।

इतिहास, भूगोल अथवा आधिदैवत जगतका भी वर्णन जो दिया गया है, यथासम्भव स्पष्ट है। इनसे भी पाठकको परिचित कराया गया है।

घटनाएँ और पात्र सभी कल्पित नहीं भी हैं— तो भी उनको सत्य बतलानेका प्रयत्न नहीं हैं। अतः घटनाओं तथा नामोंके पीछे मत पड़ें, कहानीमें प्रतिपादित तथ्यको ग्रहण करें।

कलाके लिए नहीं, सत्प्रेरणाके लिए लिखी गयी इन कहानियोंसे पाठकको लाभ हो तो मेरा प्रयत्न सफल है; भले कहानी-कला इनमें न मिलती हो।

अच्छा होगा कि इन कहानियोंके तीन भाग निकल जानेके बाद आप इन्हें मँगाया करें, इसमें डाक-व्यय कम लगेगा। नहीं तो आजकल डाक-व्यय पुस्तकके मूल्यसे अधिक हो गया है। अग्रिम भेजते समय आप जैसा लिखेंगे वैसी व्यवस्था कर दी जायगी।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान, **—'चक्र'**

मथुरा

अनुक्रमणिका

बद्ध कौन ?

'बद्धो हि को यो विषयानुरागी'

अकेला साधु, शरीरपर केवल कौपीन और हाथमें एक तूंबीका जलपात्र। गौर वर्ण, उन्नत भाल, अवस्था तरुणाईको पार करके वार्धक्यकी देहलीपर खड़ी। जटा बढ़ायी नहीं गयी, बनायी नहीं गयी; किंतु बन गयी है। कुछ श्वेत-कृष्ण-कपिश वर्ण मिले-जुले केश उलझ गये हैं परस्पर।

धूलिसे भरे चरण, कहीं दूरसे चलते आनेकी श्रान्ति। मुखकी घनी दाढ़ीपर भी कुछ धूलिके कण हैं। ललाटपर बड़ी-बड़ी स्वेदकी बूंदें झलमला आयी हैं। मध्याह्न होने-को आया, साधुको अब विश्राम करना चाहिये।

'यह क्या है ? ये लोग इस प्रकार क्यों भागे जा रहे हैं ? इतनी आकुलता क्यों है ? साधुको दूसरोंकी उलझनमें नहीं पड़ना चाहिये; किंतु दूसरोंकी विपत्ति उनके नवनीत-कोमल हृदयको द्रवित कर देती है - इसमें उनका दोष ? विपत्ति ही तो—विपत्तिके बिना क्या पूरा गाँव इस प्रकार अस्तव्यस्त भागता है ?

साधुने ग्रामके पास वट-वृक्षके नीचे बने चबूतरेपर कुछ देर विश्राम किया। कोई नहीं आया उनके समीप। गाँव बड़ा है, सम्पन्न दीखता है। ग्रामके अधिपतिकी ऊँची कोठी भी है वहाँ; किंतु गाँवमें तो कोई हलचल

है। घोड़े, छकड़े लादे जा रहे हैं। पशु इकट्ठे किये जा रहे हैं। ये लोग तो घरोंका पूरा सामान गाड़ियोंपर लाद रहे हैं। बड़ी शीघ्रतामें है सब-के-सब।

'क्या बात है भाई! आप सब बहुत घबराये-से लगते है?' साधुने स्वयं एक व्यक्तिके पास जाकर पूछा।

'महाराज, क्षमा करें।' श्रद्धापूर्वक उसने चरणस्पर्श किया—'हम ऐसी विपत्तिमें हैं कि कोई सेवा करनेमें इस समय समर्थ नहीं।'

'विपत्ति क्या है? यदि बतानेमें कोई हानि न हो…'

'पिण्डारे आ रहे हैं।' उस व्यक्तिने बताया—'प्रसिद्ध क्रूर पिण्डारा भीमपाल अपना पूरा दल लिये बढ़ा आ रहा है। कई सौ घुड़सवार हैं उसके साथ! वह असुर है प्रभु! आप भी यहाँसे कहीं दूर चले जायँ तो अच्छा। उन लोगोंमें किसीके लिये श्रद्धा नहीं। वे साधुकी भी हत्या करके प्रसन्न होनेवाले पिशाच हैं। वे लूटकर ही संतुष्ट नहीं होते, घरोंको जलाकर और गिराकर तथा जो मिले उसीको क्रूरतम रीतियोंसे पीट-पीटकर मारनेमें विनोद मानते हैं।'

'विश्वनाथके चरणाश्रित मनुष्योंकी उदारता और दयापर निर्भर नहीं किया करते।' साधुने एक बार आकाशकी ओर नेत्र उठाये—'भय उन मृत्युञ्जयके स्मरणसे भीत रहा करता है; किंतु इस समय मुझे तुम्हारे यहाँके गढ़पतिसे मिलना है। तुम इतना कर सकोगे?'

'आप गढ़पतिसे मिलेंगे?' ग्रामीण चौंका। 'पिण्डारोंके लिये कोई वेश बना लेना कठिन नहीं है। क्या पता…।'

'साधुपर शङ्का पाप होती है !' साधुने कहा—'जब शंकरका एक सेवक यहाँ आ ही गया है, तुमलोगोंको विपत्तिमें इसी प्रकार छोड़कर चला जाय, यह उसके स्वामीका अपमान है। कौन जाने आशुतोष इस बार भोमपालपर ही अनुग्रह करनेवाले हों। तुम्हारी विपत्ति-का कुछ-न-कुछ उपाय तो करना हो होगा।'

'आप मेरे साथ पधारें !' ग्रामीणकी श्रद्धा उसकी शङ्कासे प्रवल सिद्ध हुई। फिर उसने सुन रक्खा है कि पिण्डारा भीमपाल नृशंस है; किंतु शूर है। वह छलका आश्रय प्रायः नहीं लिया करता। गढ़पतिसे साधुको मिला देने मात्रसे कोई बड़ी हानि सम्भव नहीं। एकाकी शस्त्र-होन साधुका वह कर भी क्या सकता है।

× × ×

'आपको ठीक पता है कि पिण्डारे आ रहे हैं ?' साधुने गढ़पतिको इधर उधरकी बातें करनेका अवकाश नहीं दिया।

'तीन दिन पहले हमारा एक तरुण उनके आक्रमणमें घिर गया था।' गढ़पतिने भी मूल बात चलायी—'वह किसी प्रकार भाग आया। उस ग्रामको उन लोगोंने ध्वस्त कर दिया। वहाँ अब खंडहर और कहीं-कहीं उठता धुआँ होगा। कितने लोग मरे, पता नहीं।'

'आप अपने आश्रितोंकी रक्षा नहीं करेंगे ?' साधुने उलाहना नहीं दिया। उनका स्वर सामान्य था।

'वही करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।' खेदभरे स्वरमें गढ़पति कह रहे थे—'क्षत्रिय हूँ। मृत्युसे डरता नहीं। किंतु अपने सैनिकोंके साथ मरकर भी रक्षाकी कोई आशा नहीं। ये मुट्ठीभर वीर उन शतशः दुर्दान्त दस्युओंके पद रोक नहीं सकते। अतः हम ग्राम खाली कर रहे हैं। घरोंका मोह छोड़ना पड़ेगा। शेष सब चल सम्पत्ति हम ले जायँगे और खेत अभी तो खाली पड़े हैं।'

'निकल जा सकेंगे आप?' साधुका प्रश्न जितना सीधा था, उत्तर उतना कठिन था।

'कम आशा है। उनके अश्व वन्यपथके अभ्यस्त हैं। कोई वनका मार्ग उन्हें अज्ञात नहीं।' बड़ी निराशा थी गढ़पतिके स्वरमें—'वे ग्रामको खाली पाकर क्रुध होंगे। इस प्रदेशमें जनपद दूर-दूर हैं। वे थके, भूखे आयेंगे। उनके घोड़ोंको खली-दाना आवश्यक होगा। लंबी यात्राके बिना आगे भी आशा नहीं। निश्चय वे हमें ढूँढ़ेंगे। पर दूसरा कोई उपाय नहीं। वे प्रातः यहाँ पहुँचेंगे। तबतक हम जितनी दूर जा सकें।'

'इतनी दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है।' साधुने आश्वासन दिया—'मैं तुम्हें रोकता नहीं हूँ। रुक जाओ तो यहाँ भी विश्वनाथ सबकी रक्षा कर लेंगे। भरोसा न हो तो, कहीं इतने पास रुको सबके साथ कि जब पिण्डारे लौट जायें, तुमलोग आकर अपने घर सँभाल सको।'

'आप उनके स्वभावसे अपरिचित हैं।' गढ़पतिके स्वरमें वही वेदना बनी रही। 'घर सँभालने योग्य रहने दें, ऐसा सौम्य उनमें एक भी न मिलेगा।'

'मैं अपने विश्वनाथके स्वभावसे परिचित हूँ। अपने आश्रितकी उपेक्षा करना उन्हें आता नहीं।' साधुके स्वरमें अविचल आस्था गूँज रही थी—'तुम्हारे घर तुम्हें कल तीसरे पहर सुरक्षित मिलेंगे।'

'आप यहाँ रुकनेका आग्रह न करें।' गढ़पतिने बड़े खेदके साथ कहा—'एक सम्मान्य अतिथिको शत्रुके मुखमें—भूखे भेड़िये-जैसे शत्रुके मुखमें छोड़कर जानेका कलंक लेनेके बदले ··।'

'ठहरो!' साधुने बीचमें रोक दिया। 'मेरा कोई शत्रु नहीं। विश्वनाथके विश्वका कोई जन नहीं जो मेरा सुहृद् न हो। साधु कहाँ रहे, कहाँ न रहे; वह निर्णय करनेका तुम्हें अधिकार है, ऐसा तुम नहीं सोचते होगे।'

'मैं आज्ञानुवर्ती हूँ; किंतु······।'

'तब केवल आज्ञाका पालन करो!' साधुने स्थिर स्वरमें आदेश दिया—'यहाँसे सबको लेकर इसलिये जाओ कि तुम सब स्वतः आश्वस्त रह सको। मध्याह्नके पश्चात् यहाँ लौट आ सको, इतनी दूर हट जाना पर्याप्त होगा।'

साधुने किसी प्रकार भी भोजन करना स्वीकार नहीं किया। वे वहाँसे सीधे उसी वटके नीचे आये और अपने भजन-पूजनमें लग गये।

× × ×

'हम पूरे ग्रामका चक्कर करते आये हैं!' प्रचण्डकाय भीमपालके सम्मुख उसके अपने सैनिकोंके स्वर भी भयसे काँपते थे—'सूना पड़ा है ग्राम। खुले पड़े हैं घरोंके द्वार।

टूटी चारपाईतक उनमें नहीं है।

'बको मत !' भीमपाल अब भी अपने काले घोड़ेपर ही सवार था। उसका कर्कश स्वर गूँजा—'अश्वोंको दाना चाहिये। हमारे सभी सैनिक अब भोजन तथा विश्राम चाहते हैं। सूने घर ! हम चमगीदड़ नहीं हैं कि सूने घरोंमें उलटे लटकेंगे। उन घरोंको जलाकर हाथ सेंक लेनेका काम पीछे, पहले भगोड़ोंको ढूँढ़ निकालो।'

'एक आदमी है। एक कौपीनधारी नंगा साधु उस बरगदके नीचे।' एक सैनिकने सूचना दी—'वह आँखें बंद किये बैठा है।'

'बाँध लाओ उसे !' आज्ञा पूरी होते-न-होते तीन-चार अश्व दौड़ पड़े।

'गाँवके लोग कहाँ गये !' रस्सियोंसे बँधे सामने उपस्थित साधुसे भीमपालने पूछा सही; किंतु उसे आश्चर्य हो रहा था कि यह साधु बाँधे जानेपर भी प्रसन्न है और कोई प्रतिवाद नहीं करता।

'मुक्त पुरुष बन्दियोंका विवरण नहीं रखते और बंदीके प्रश्नोंका उत्तर देनेको वे विवश भी नहीं।' साधुने नम्र किंतु दृढ़ स्वरमें उत्तर दिया।

'बंदी कौन ?' भीमपाल कुछ आश्चर्यमें पड़ गया।

'जो भागनेको विवश हुए। जो घोड़ोंपर बैठे भागे आये। जो विश्वमें वासनाओंसे बँधे भागते-नाचते डोलते हैं।'

'जो रस्सीसे बँधा सामने खड़ा है !' अब पिण्डारेने अट्टहास किया।

'ये रस्सियाँ मिट्टीको बाँधती हैं।' साधु हँसे—'विश्व-नाथके सेवकको बाँधनेकी शक्ति इनमें नहीं हैं। तू बाँधेगा प्रलयंकरके सेवकको ? स्वयं तेरा बन्धन कट नहीं सकता इस साधुके करोंका आश्रय पाये बिना।'

'मैं बँधा हूँ ?' दस्यु चिल्लाया—'मैं तेरे प्रलापमें उलझ नहीं सकता। गाँवके भगोड़ोंका पता तुझे देना पड़ेगा।'

'अपना बन्धन तुझे दीखे, यह मेरे आराध्यकी कृपाके बिना सम्भव कहाँ है ?' साधुने ध्यान ही नहीं दिया कि दो सैनिक अपने सरदारके संकेतके अनुसार कोड़े उठाये अश्वसे उतरकर उसके दोनों ओर आ खड़े हुए हैं। उन्होंने तो एक बार आकाशकी ओर दृष्टि उठायी—'आशुतोष !'

'आप मुझे क्षमा करें।' भीमपाल अपने अश्वसे कूदा और सीधे साधुके चरणोंपर उसने मस्तक रख दिया—'ये भयंकर सर्प ! ये फण फैलाये जलते नेत्रोंसे घूरते काले विषधर ! आप इनसे मेरी रक्षा करें।'

किसीकी समझमें कुछ नहीं आया। किसीको कुछ नहीं दीख रहा था। पिण्डारे सैनिकोंने केवल इतना समझा कि साधु कोई साधारण मनुष्य नहीं है। उसने अवश्य कुछ किया है—कोई चमत्कार !

'ये मुझे जकड़े हैं। ये मेरी हड्डी-हड्डी तोड़े दे रहे हैं। मैं इनके विषसे जला जा रहा हूँ।' भीमपाल व्याकुल हो-कर इधर-उधर हाथ-पैर पटकने लगा था—'आप कृपा करें ! आप रक्षा करें ! आप क्षमा करें !' बार-बार साधुके पैरोंपर वह सिर पटकने लगा था।

'ये नाग आज तुम्हें नहीं बाँध रहे हैं।' साधु स्वस्थ प्रसन्न खड़े थे—'ये तो सदासे बाँधे हैं तुम्हें। ये काले, नीले, पीले, चित्रवर्णी नाग—तुम्हारा काम, क्रोध, लोभ—तुम्हारी सांसारिक विषयोंकी प्रबल तृष्णा—तुम तो सदा इनके द्वारा जकड़े हो। सदा इनके विषसे दग्ध हो रहे हो। आज तुमने प्रभुकी कृपासे अपना बन्धन देखा।'

'सचमुच मैंने आज देखा!' भीमपालका क्रन्दन कम हुआ। उसने अपने हाथों साधुके बन्धनकी रस्सी खोली और फिर चरणोंपर गिरा—'अपने बन्धनको देखनेकी दृष्टि आपने दी प्रभु! इससे छूटनेकी पद्धति—अब मैं इन चरणोंको छोड़नेवाला नहीं।'

× × ×

गाँवके लोग शामको लौट आये थे। उन्हें भीमपालके यहाँ आनेके चिह्नरूपमें कहीं-कहीं घोड़ोंकी लीद मात्र मिली। वे साधु मिले नहीं। भीमपालके दलका भी फिर नाम नहीं सुनायी पड़ा। अवश्य एक प्रचण्डकाय साधु जो मौनी था, उक्त घटनाके कुछ ही दिनों बाद चित्रकूटमें देखा जाने लगा था।

शरण या कृपा ?

'मेरा लड़का शरण चाहता है महाराणा !' गोस्वामी श्रीगोविन्दरायजीके नेत्र भर आये थे। उनका स्वागत-सत्कार हुआ था, उनके प्रति सम्मान अर्पित करनेमें महाराणाने कोई संकोच नहीं किया था; किन्तु गोस्वामी-जीको तो यह स्वागत-सम्मान नहीं चाहिये। उनके हृदय-में जो दारुण वेदना है, उसे शान्त करनेवाला आश्वासन चाहिये उन्हें। 'आज एक वर्षसे अधिक हो गया मेरे पुत्रको भटकते। यवन सत्ताधारी चमत्कार देखना चाहता है। चमत्कार कहाँ धरा है मेरे पास और मेरा नन्हा सुकुमार लाल चमत्कार क्या जाने। यवनोंके भयसे जोधपुर, जयपुर—कोई उसे स्थायी आश्रय नहीं देना चाहता। मैं अपने पुत्रके लिये आपसे शरण माँगने आया हूँ महाराणा।'

उदयपुरके महाराणा राजसिंह कुछ कहें, इससे पूर्व ही महामन्त्री उठ खड़े हुए—'गोस्वामीजी ! आप जानते ही हैं कि दाराशिकोहका पक्ष लेनेके कारण औरंगजेब उदयपुरसे चिढ़ गया है। फतेहाबादकी पराजय चाहे जिस-के दोषसे हुई हो, उसने हमारे वीरोंकी एक बड़ी संख्यासे हमें हीन कर दिया है।'

'हमारा सौभाग्य है कि श्रीनाथजी पधारना चाहते

हैं !' महाराणा राजसिंहने महामन्त्रीकी बात काटनेका प्रयत्न किया। गोस्वामीजी को सर्वथा निराश कर दिया जाय, यह उन्हें स्वीकार नहीं था।

'सीसौदिया-कुल शैव हैं। भगवान् एकलिंग हमारे आराध्य हैं।' महामन्त्रीकी राजनीति कहती थी कि औरंगजेबसे शत्रुता लेना ठीक नहीं है। वे महाराणाको भरे दरबारमें न रोक सकते थे, न समझा सकते थे। इसलिये उन्होंने यह अपना ब्रह्मास्त्र प्रयुक्त किया था।

'श्रीमान् !' महाराणाने देखा कि अन्त:पुरसे राज-माताकी निजी सेविका दोनों हाथ जोड़े सिंहासनके सामने मस्तक झुकाये आ खड़ी हुई है। उसे संकेतसे ही बोलने-की अनुमति मिल गयी। कदाचित् ही राजमाता किसी राजकार्यमें कोई हस्तक्षेप करती थीं; किन्तु यह तो मेवाड़का बच्चा-बच्चा जानता था कि वे इस दिव्य भूमि-की महेश्वरी हैं। उनका संकेत भगवतीकी अनुल्लङ्घनीय आज्ञा है मेवाड़में। सबके नेत्र सेविकाकी ओर लग गये। उसने केवल इतना कहा—'माताजी स्वयं कुछ कहना चाहती हैं, और धीरे मस्तक झुकाकर लौट गयी।

'राजसिंह ! तू होता कौन है त्रिभुवनके स्वामीको शरण देनेवाला ?' सुकोमल कण्ठ; किंतु बड़ा सुदृढ़ स्पष्ट स्वर सिंहासनके पीछे यवनिकाके भीतरसे आया। 'वे दयामय तुझे शरण देने आ रहे हैं। तुझपर कृपा करने आ रहे हैं। तुझे भूलना नहीं चाहिये कि सीसौदियोंका सिंहासन कापुरुषोंके लिये नहीं है।'

'माता !' जगज्जननी !' गोस्वामी गोविन्दरायजी

दोनों हाथ जोड़े खड़े हो गये यवनिकाकी ओर मुख करके।

'महाराज, मैं तो आपके पुत्रकी एक तुच्छ दासी हूँ।' राजमाता बड़ी नम्रतासे कह रही थीं—'वे त्रिलोकीनाथ हैं। मेवाड़को वे अपने श्रीचरणोंसे पवित्र करना चाहते हैं यह उनकी कृपा है। राजसिंह ! देखता क्या है ? उठ खड़ा हो, जिनका सिंहासन है, वे पधार रहे हैं। एक सेवकमात्र है तू उनका। गोस्वामीजी ! उदयपुरका सिंहासन आपके पुत्रके श्रीचरणोंको पाकर धन्य बनेगा।'

'माताजी !' महामन्त्री कुछ कहनेके लिये खड़े हो गये हाथ जोड़कर ; क्योंकि महाराणा सचमुच सिंहासनसे उठ खड़े हुए थे और गोस्वामीजीके सम्मुख मस्तक झुका रखा था उन्होंने।

'राजपूतको राजनीति नहीं चाहिये महामन्त्रीजी !' जैसे माता छोटे बच्चेको झिड़क रही हो, राजमाताके स्वरमें वही स्नेहमय वात्सल्य था—'राजनीतिको राजपूतके पैरोंके पीछे चल सकने योग्य बनना चाहिये। लेकिन आप डरते क्यों हैं ? तीनों लोक जिसकी शरणमें हैं, वे किसीकी शरण नहीं लिया करते। उन्होंने यह गौरव जो आपको दिया है, वह उनकी कृपा है। वे यह संदेश लेकर आ रहे हैं कि अब मेरा राजसिंह पीड़ितोंको शरण देने योग्य हो गया है। उनका वरद हस्त इसके सिरपर रहेगा और कदाचित् दिल्लीके उस क्षुद्र यवनको भी इसकी शरण लेनी पड़ेगी।'

'धन्य हो माता !' गोस्वामीजीके नेत्रोंसे अश्रु बिन्दु

टपकने लगे। अब किसीको कहनेके लिये कुछ नहीं रह गया था।

'महाराज ! अपने लालजीके साथ आप कब पधार रहे हैं ?' राजमाताने पूछ लिया और वहीं निश्चित हो गयी जोधपुरसे श्रीनाथजीकी प्रस्थान-तिथि।

× × +

(२)

सं० १७२६ में औरंगजेबने मथुरापर चढ़ाईकी। ध्वस्त हो गयी वह पावन भूमि अत्याचारीके नृशंस करोंसे। श्रीकेशवरायजीके विशाल मन्दिरको खंडहर बनाकर विपुल सम्पत्ति आततायी लूट ले गये। इस सफलतासे उनके मुँह रक्त लग गया। दूसरी ओर भक्तोंके हृदयकी जो दशा हुई—उसकी कल्पना ही कठिन है।

भगवान् तो भाववश हैं। जो जैसी भावना करे, उसके लिये वे वैसे ही हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीका पुष्टिमार्ग ठहरा सुकोमल वात्सल्य-रसका रसिक। नन्हें गोपाल लाल— वे तो स्नेहके, दुलारके पात्र हैं। उनका तो लाड़ लड़ाया जा सकता है। वहाँ चमत्कारका क्या काम। श्रीनाथजीको क्रूर करोंसे कैसे बचाया जाय, यह एक समस्या हो गयी थी। वयोवृद्ध श्रीगिरिधररायजीने ही सम्मति दी थी श्रीगोविन्दरायजीको कि श्रीनाथजीको अब चुपचाप राजस्थान पधारना चाहिये। अब व्रजका वातावरण उनके अनुकूल नहीं रहा। उनकी इच्छा अब यहाँ रहने-

की जान नहीं पड़ती ।

यवन-शासककी लोलुप दृष्टि श्रीनाथजीकी सम्पत्ति-पर पड़ चुकी थी । उसने संदेश भेज दिया था—'चमत्कार दिखाओ या स्थान छोड़ दो ।'

रोते-बिलखते स्नेहियोंने अपने स्नेहाधारकी सुरक्षाके लिये उन्हें विदा करना आवश्यक माना । श्रीनाथजी गिरिराज गोवर्धनसे विदा हुए और आगरा पहुँचे । कोटा, बूँदी, पुष्कर आदि कई स्थानोंमें इस यात्रामें वे दयामय पधारे । पता नहीं, किन-किनके किस-किस भावको, उन्हें सार्थक करना था । जोधपुरके महाराज यशवन्त-सिंहजीने स्वयं प्रार्थना की अपने यहाँ श्रीनाथजीके चातु-र्मास्य करने की । जोधपुरके बाँबा सोनीमें श्रीनाथजी महाराज यशवन्तसिंहजीकी प्रार्थनासे पधारे ।

औरंगजेब– वह महाभयदायक दिल्ली-सम्राट्, कोई भी नरेश उसके भयसे अपने यहाँ श्रीनाथजीको स्थायी निवास नहीं देना चाहता था । हृदय ललकता था, उत्कण्ठा होती थी; किंतु मन मसोसकर रह जाना पड़ता था । उस महाभयके सम्मुख होनेका साहस नहीं था किसीमें । इस विकट परिस्थितिमें मेवाड़ धूमधामसे श्री-नाथजीका स्वागत करने आगे बढ़ा ।

श्रीनाथजी मेवाड़ पधारे । सिंहाड़ स्थानपर पहुँचकर उनका रथ एक पीपल वृक्षके नीचे रुक गया । अब खींचनेके सब प्रयत्न बिफल हो रहे थे । गोस्वामी श्री-गोविन्दरायजी बोले—'अब मेरा लड़का यहीं रहना चाहता है ।'

'जो प्रभुकी इच्छा !' राजमाता और महाराणाने स्वीकार कर लिया है। कारीगर एकत्र हो गये। श्री-नाथजीका विशाल मन्दिर बनने लगा। एक वर्षसे भी कम समय लगा। फाल्गुन कृ० ७ सं० १७२८ को तिल-कायत गो० श्रीदाऊजीके करोंसे श्रीनाथजीकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई। सिहाड़स्थान 'नाथद्वारा' बन गया। भगवान् एकलिङ्गकी कृपापात्र मेवाड़-भूमि श्रीनाथजीके श्रीचरणों-का सान्निध्य पाकर धन्य हो गयी।

× × ×

(३)

'माँ ! रूपनगरसे पत्र आया है !' महाराणा राज-सिंहने राजमाताके चरणोंमें पहुँचकर उनके सम्मुख रूप-नगरकी राजकुमारीका पत्र रख दिया। औरंगजेबको भी अपने पिता, पितामहके समान राजपूत कन्यासे विवाह करनेकी धुन चढ़ी थी। रूपनगरको दुर्बल राज्य समझ-कर उसने महाराजको पत्र लिख दिया था—'अपनी कन्या विवाह दो या युद्धके लिये प्रस्तुत रहो।' बेचारी राज-कुमारीको कोई शरणदाता नहीं दीख रहा था। राजपूत-कुमारी क्या यवनकी अङ्कशायिनी होगी ? छिः ! उसने मेवाड़के राणाको पत्र लिखा। किसी दिन महाराज भीष्मककी कन्या रुक्मिणीजीने जैसे द्वारका पत्र लिखा था मयूरमुकुटीको - ठीक उसी प्रकार।

'सोलंकीकी कन्या मेरी पुत्रवधू बनेगी।' राजमाताने

पत्र लौटा दिया—'बेटा ! इसमें पूछनेकी क्या बात है ? एक पवित्र कुमारी अपनी रक्षाके लिये पुकारेगी तो सीसौदिया अस्वीकार कैसे करेगा। फिर तेरे लिये अब पूछनेकी क्या बात है। जो शरण माँगे—उसे शरण देता चल। श्रीनाथजी तेरे यहाँ शरण लेनेका बहाना करके पधारे हैं। शरण देनेवाले तो वही हैं। उन्होंने यह संकेत कर ही दिया है कि तुझे शरण देना है—स्वयं औरंगजेब शरण लेने आवे तो उसे भी शरण देना है।'

कुछ कहनेको है नहीं। रूपनगरकी राजकुमारीको महाराणा राजसिंह ले आये। वे मेवाड़की महारानी बन गयीं आकर। बेचारा औरंगजेब—वह कुढ़कर रह गया। उसे ऐंठते देख उसीके दो महासेनापति बिगड़ उठे थे। महाराज जयसिंह और यशवन्तसिंह। दोनोंने कह दिया—'सम्राट् ! मेवाड़ हमारी श्रद्धाका स्थान है। भगवान् एकलिंग और श्रीनाथजी हमारे आराध्य हैं। आप रूपनगरके साथ अन्याय कर रहे थे। अब यदि मेवाड़से आप युद्ध ही करना चाहें तो हम राजपूतोंको महाराणाके पीछे खड़े होना है।'

यहींतक इति नहीं हुई। महाराणा राजसिंहका धिक्कारपूर्ण पत्र मिला औरंगजेबको। वह हारकर बैठ जानेवाला तो नहीं था। जिसने अपने पिता और भाइयोंके साथ ही कृतज्ञता नहीं दिखलायी, वह राजपूत सेनापतियोंके प्रति कृतज्ञ हो सकता था ? लेकिन जयपुर और जोधपुरको भी शत्रु बनानेका साहस उसमें नहीं था। महाराज जयसिंहको उसने महाराष्ट्र भेज दिया शिवाजीसे

संग्राम करने और महाराज यशवंतसिंहको अफगान-युद्धमें काबुल भेजा उसने।

'माँ ! जोधपुरकी राजमाता शरण लेने आ रही हैं।' सचमुच महाराणा राजसिंह जैसे शरण देनेके लिये ही पृथ्वीपर आये थे। कृतघ्न औरंगजेबके लिये महाराज यशवन्तसिंह काबुलमें खेत रहे युद्ध करते हुए और वह उन्हींके पुत्रोंको बंदी बनानेकी धुनमें लगा था। छोटे-छोटे अनाथ बच्चोंको लेकर विधवा महारानी मेवाड़के महाराणाकी शरण आ रही थीं।

'तू तो शरणदाताका प्रतिनिधि हो गया है।' राजमाताने हाथ उठाकर आशीर्वाद दे दिया।

यहीं दिल्लीके सम्राट्से युद्धका सीधे श्रीगणेश हुआ। लेकिन होना क्या था ? जहाँ श्रीनाथजी शरण होकर विराजमान थे, वहाँ दिल्लीका सम्राट् किस गिनतीमें आता है। कोई हिमालयपर सिर पटके—हिमालयकी चट्टानें टूट जायँगी उससे ?

× × ×

(४)

औरंगजेबका दुर्भाग्य—महाराष्ट्रमें वह उन शूरोंसे उलझ पड़ा था, जिन्हें समर्थ स्वामी रामदासकी कृपा प्राप्त थी और मेवाड़में वह उलझ पड़ा महाराणा राजसिंहसे, जिनके यहाँ कृपा करके शरणका बहाना लेकर स्वयं श्रीनाथजी बैठे थे।

क्या हुआ जो एक बार विशाल यवनवाहिनीके लिये राजधानी खाली करके महाराणा अरावलीके वनोंमें चले गये। यह युद्धनीति तो मेवाड़को हिंदूकुलसूर्य महाराणा प्रतापसे उत्तराधिकारमें मिली थी। अरावलीकी घाटीमें राजकुमार जयसिंह और भीमसिंह शत्रु-सेनाका कचूमर निकालनेको प्रस्तुत थे। उदयपुरपर यवन-सेना अधिकार इसीलिये कर सकी कि वह पर्वतीय मार्गसे नहीं आयी।

'राजसिंहसे बेकार हमलोग डरते थे। यह काफिर डरपोक ही निकला।' मुगल सेनापति उदयपुरको खाली पाकर निश्चिन्त हो गया था। उसके सैनिक आमोद-प्रमोदमें लग गये थे। 'बहुत माल है काँकरोलीमें। कल हम वहाँ कूच करेंगे।'

'काँकरोलीकी ओर उठनेवाली आँखें तीरोंसे नहीं, हमारे भालोंसे फोड़ दी जायँगी।' पता नहीं कहाँसे राजकुमार जयसिंह आ धमके। उनका अश्व दो पैरोंपर खड़ा था और भाला धमक ही दिया था उन्होंने सेनापतिपर। वह तो अंगुल-दो-अंगुलके अन्तरसे बच गया।

'जय एकलिङ्ग!' राजपूत वीरोंका विजय-घोष गूँज रहा था। छपाछप खड्ग बज रहे थे और भयभीत, भागते, गिरते-पड़ते शत्रुओंके शवोंसे धरा ढकती जा रही थी।

'मैं आपकी शरण हूँ। सहज मेरी जान छोड़ दें। निकल [illegible] दें मुझे!' मुगल सेनापति ही

नहीं, स्वयं मुगल शाहजादेको गिड़गिड़ाकर महाराणासे यह भीख माँगनी पड़ी। वह करता भी क्या, मेवाड़की ओर राजपूत वीर पीछा दबाये बढ़े आ रहे थे और गोलकुण्डाका सामनेका मार्ग महाराणाके अनुचर भीलोंने रोक रक्खा था। वे भील, जिनसे दयाकी आशा की नहीं जा सकती। एकमात्र महाराणा ही शरण दे सकते थे।

केवल शाहजादेकी यह दशा नहीं थी, स्वयं सम्राट् पधारे मेवाड़के महापर्वतपर टक्कर मारने। उनका सेनापति दिलावर खाँ, राठौर वीर दुर्गादास और रूप-नगरके सोलंकी महाराजकी चपेटमें आकर कुत्तेकी भाँति पूँछ दबाकर भाग गया। औरंगजेबको दुर्गादाससे प्राण बचाने कठिन हो गये। अजमेर जाकर उसे शरण लेनी पड़ी। दक्षिणके युद्धको रोककर शाहजादा मुअज्जमको उसने बुला लिया। लेकिन उस बेचारेके भाग्यमें भी पराजय ही लिखी थी। एक ओर महाराणा राजसिंह राजकुमार जयसिंहके साथ उसकी सेनाको स्थान-स्थानपर पराजित कर रहे थे तो दूसरी ओर राजकुमार भीमसिंह गुजरात, इन्दौर, सिद्धपुर—इस प्रकार एकसे दूसरे प्रदेशों-पर विजयध्वजा फहरा रहे थे।

'सब काफिर एक हो गये!' हाँफ गया दिल्लीका घमंडी सम्राट्। 'राजसिंहको छोड़ मेवाड़का कोई—कोई दरबारका गुलाम भी सुलह चाहे तो मैं चित्तौड़ और मारवाड़ दोनों छोड़ दूँगा।'

मुगल दरबारका दूत आया यह संदेश लेकर। महाराणा महाप्रयाण कर रहे थे। मेवाड़के सरदारोंने सन्धि स्वीकार की। 'मुझे शरण दो ! मेरी जान बख्शो।' इसके अतिरिक्त औरंगजेबकी यह सन्धि और क्या थी। यह गौरव किसने दिया मेवाड़को ? उसने—जो शरण लेने आया था या जो कृपा करके नाथद्वारेमें आ बैठा था।

भरोसा भगवान्‌का

'वह देखो !' याककी पीठपरसे ही जो कुछ दिखायी पड़ा उसने उत्फुल्ल कर दिया। अभी दिनके दो बजे थे। हम सब चले थे तीर्थपुरीसे प्रातः सूर्योदय होते ही; किंतु गुरच्याँगमें बिश्राम-भोजन हो गया था और तिब्बतीय क्षेत्रमें वैसे भी भूख कम ही लगती है। परन्तु जहाँ यात्री रात-दिन थका ही रहता हो, जहाँ वायुमें प्राणवायु (ऑक्सिजन) की कमीके कारण दस गज चलनेमें ही दम फूलने लगता हो और अपना बिस्तर समेटनेमें पूरा पसीना आ जाता हो, वहाँ याककी पीठपर ही सही, सोलह मील-की यात्रा करके कोई ऊब जाय, यह स्वाभाविक है। कई बार हम पूछ चुके थे 'खिङ्लुङ्' कितनी दूर है। अब दो बज चुके थे और चार-पाँच बजेतक हमें भोजनादिसे निवृत्त हो जाना चाहिये। तंबू भी खड़े करनेमें कुछ समय लगता है। सूर्यास्तसे पहले ही अत्यन्त शीतल तिब्बती वायु चलने लगती है। इन सब चिन्ताओंके मध्य एक इतना सुन्दर दृश्य दिखायी पड़े—सर्वथा अकल्पित, आप हमारी प्रसन्नताका अनुमान नहीं कर सकते।

'ओह ! यह तो संगमरमरका फुहारा है।' मेरे बंगाली मित्र भूल ही गये कि वे अर्धपालित पशु याकपर बैठे हैं। याक तनिकसा स्पर्श हो जानेसे चौंककर कूदने-भागने

लगता है। उसपर बैठनेवालेको बराबर सावधान रहना पड़ता है। कुशल हुई—मेरे साथीका याक तनिक कूद-कर ही फिर ठीक चलने लगा था। उसे साथ चलनेवाले पीछेके याकने सींगकी ठोकर दी थी, मेरे साथी सामने देखनेमें लगे होनेसे असावधान थे; किंतु गिरे नहीं, बच गये।

'संगमरमर नहीं है, गंधकका झरना है। गंधकके पानीने अपने आप इसे बनाया है।' हमारे साथके दुभा-षिये दिलीपसिंहने हमें बताया। वह पैदल चल रहा था; किन्तु प्राय: मेरे याकके साथ रहता था।

'अपने आप बना है यह!' लगभग १५ फुट ऊँचाई, विशाल प्रफुल्ल कमलके समान चमकता गोल हौज जैसे रक्खा गया हो और उसके चारों ओर एकके बाद दूसरे क्रमसे एक दूसरेके नीचे न रखकर तनिक इधर-उधर नीचे चार फुटतक वैसे ही उज्ज्वल, कमलाकार, किन्तु कुछ छोटे-बड़े हौज सजा दिये गये हों। बहुत ही कुशल कारी-गर बहुत परिश्रम एवं रुचिपूर्वक सजावे तो ऐसा कमलों-के समान हौजोंका स्तम्भ बनेगा। इतनी व्यवस्था, इतनी सजावट और ऐसी सुचिक्कण कारीगरी थी कि विश्वास नहीं होता था कि यह मानव-कला नहीं है। सभी हौजोंमें निर्मल नीला जल दूरसे झिलमिल करता दीख रहा था।

'झरना अपने आप बना है, परंतु यह फुहारा तो किसीने बनवाया है। मेरे बंगली साथीने कहा—'वहाँ संगमरमर कहाँसे—कितनी दूरसे आया होगा।' हम लोगोंको तिब्बतके इस क्षेत्रमें कहीं संगमरमर होनेकी

आशा नहीं थी।

'वहाँ एक टुकड़ा भी संगमरमर नहीं। गंधकके पानी-का यह कार्य है।' दिलीपसिंहने हमें फिर समझाया; किन्तु हम उसकी बात तो उस झरनेके पास ही जाकर समझ सके। गंधकका झरना है। उसके गरम जलमें बहुत अधिक गंधक है। वह गंधक बराबर पत्थरोंपर जमता रहता है। इससे संगमरमरके समान उज्ज्वल, बेल-बूटे बनी जैसी तहें जमती जाती हैं। यह पूरा कमल-स्तम्भ इसी प्रकार बना था।

'वहाँ कोई है, कोई संन्यासी जान पड़ता है।' गेरुए वस्त्र दीख पड़े एक दो पास पत्थरपर फैले। नीचेके छोटे हौजमें बैठा कोई स्नान कर रहा था। कुछ तिब्बती लोग झरनेके पाससे अपनी भेड़ें हाँके लिये जा रहे थे।

'ये वही संन्यासी हैं, जो हमलोगोंको उस दिन दर-चिनमें मिले थे, जब हम कैलास-परिक्रमा करने जा रहे थे। लगता है कि ये भी आज ही तीर्थपुरीसे चले हैं।' दिलीपसिंहमें दूरसे हीं लोगोंको पहचान लेनेका विचित्र शक्ति है। उसका अनुमान ठीक था। वे वही संन्यासी थे' और तीर्थपुरीसे तो नहीं, पर आज गुरच्याँगसे आ रहे थे।

'अब तो आप मेरे साथ ही चलेंगे!' मैंने संन्यासी-जीको आमन्त्रण दिया। मेरे बंगाली साथी 'नीती-घाटी' होकर जोशीमठ जाना चाहते हैं। उन्हें बदरीनाथ जाना हैं। यहाँ खिङ्-लुङ्से ही उनका मार्ग पृथक् होता है। अब मेरे साथ केवल दिलीपसिंह रह जायगा। एक साथी

और हो जाय तो अच्छा, यह मैंने सोचा था।

'जैसी आपकी इच्छा ! परन्तु मैं आपके लिये भार सिद्ध होऊँगा। संन्यासी बड़े प्रसन्नमुख युवक हैं। उनकी बात सच है। यहाँ तिब्बतमें मनुष्यके लिये अपना निर्वाह भी कठिन हो जाता है। भारतीय सीमासे अपने साथ लाया सामान ही काम देता है। यहाँ तो नमक, मट्ठा, दूध, दही, मक्खन कहीं-कहीं मिलता है। चेष्टा करनेपर एकाध सेर सत्तू और एकाध सेर आटा मिल जाता है तीन-चार रुपये सेर। भारतीय व्यापारी जब तिब्बतमें आ जाते हैं, तब कुछ सुविधा हो जाती है ; किंतु हम पंद्रह-बीस दिन मौसिमसे पहले आ गये हैं। अभी व्यापारी आने नहीं लगे हैं। ऐसी अवस्थामें एक व्यक्तिकी भोजन-व्यवस्था और ले ली जाय तो वह भार तो बनेगी ही।

'उस भारकी आप चिन्ता न करें।' मैंने हँसकर कहा। 'हमारे साथका सब सामान आज समाप्त हो जायगा। तिब्बतसे बाहर पहुँचनेमें अभी सात-आठ दिन लगेंगे। इतने समयका निर्वाह तो कैलासके अधिष्ठाताको ही करना है। उसे एक भारी नहीं लगेगा तो दो भी नहीं लगेंगे।'

'तुम भी मेरे-ही-जैसे हो।' खुलकर हँसे वे महात्मा। 'तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगा। बड़ा आनन्द रहेगा। कोई चिन्ता मत करो।' यहाँ इतना और बता दूँ कि हमें अन्त तक चिन्ता नहीं करनी पड़ी। तिब्बतमें दाल और शाक तो मिलता नहीं था; किंतु हमें आटे और मक्खन-का अभाव कभी नहीं रहा। आटा बराबर मिलता गया।

मक्खन-रोटी या दही-रोटी ऐसा भोजन नहीं है कि उसकी कोई आलोचना की जाय।

× × ×

'आप पहले ही इधर आ चुके हैं। हम लोग मानीथंगा और ठाँजा पीछे छोड़ चुके हैं। छिरचिनसे हमने आज प्रातःकाल ही प्रस्थान किया है। आज यदि कुंगरी-बिंगरी और जयन्तीके दर्रे पार कर सके तो ऊटा तथा जयन्तीके बीच रात्रि-विश्राम होगा। वहाँ एक होटल (तंबूमें) इन दिनों आ गया होगा। दूसरे दिन ऊटा धुरा (दर्रा) पार करके कल हम भारतीय सीमामें पहुँच जायेंगे। ये बातें मुझे संन्यासीजीने बतायीं और इसीलिए मैंने उनसे प्रश्न किया। वैसे व्यक्तिगत परिचय करनेमें मेरी रुचि कम है, अन्ततक मैंने उन संन्यासीजीका नाम नहीं पूछा। उनकी कुटी कहीं है या नहीं, यह जाननेकी इच्छा मुझे नहीं हुई।

'मैं पिछले ही वर्ष यहाँ आया था; किंतु देरसे आया। लौटते समय मार्गमें हिमपात होने लगा। इच्छा होनेपर भी सौ बार नहीं जा सका। अब इस वर्ष श्रीबदरीनाथजीके दर्शन करने आया तो वहाँसे इधर चला आया।' मुझे इस समय पता लगा कि ये स्वामीजी गर्ब्यांगके रास्ते न आकर नीतिघाटीके मार्गसे आये थे और हमें जब दरचिन-में मिले थे, तब वहाँसे मानसरोवर चले गये थे। हमने तो समझा था कि वे हमारे समान मानसरोवर होकर

कैलास आये होंगे। पैदल यात्री होनेके कारण उन्हें समय अधिक लगता होगा।

'हिमपात तो आज भी होता दीखता है। आगे कोई पड़ाव भी नहीं।' तिब्बतमें वर्षा कम ही होती है। इस अञ्चलमें जब मेघ आते हैं, तब पहले हिमशर्करा पड़ती है। चीनीके दानोंसे दुगुनी-चौगुनी हिम-कंकड़ियाँ। वस्तुतः वे जलकी बूँदें होती हैं जो शीताधिक्यके कारण जम गयी होती हैं। हिमपातकी वे पूर्वसूचना हैं। उनके पश्चात् हिमपात होता है। कद्दूकसमें कसे नारियलके अत्यन्त पतले आध इंचसे भी कुछ छोटे टुकड़ोंके समान हिम वायुमें तैरती गिरती है। असंख्य टुकड़े—लगता है कि रुईकी वर्षा हो रही है। सम्मुखका मार्ग नहीं दीखता। पृथ्वी उज्ज्वल हो जाती है। आज आकाशमें मेघ हैं, दो-चार हिमशर्कराकी कंकड़ियाँ मुखपर पड़ चुकी हैं। आज जब दो धुरे (दर्रे) पार करने हैं, तब उनपर चढ़ते समय हिमपातका सामना करना निश्चित है।

'यह हिमपात तो खेल है।' स्वामीजीने कहा। 'हिमपात तो मार्गशीर्षसे प्रारम्भ होता है। लगातार हिमवर्षा होती है और एक साथ दस-पन्द्रह फुट हिम पड़ जाती है। उसमें मनुष्य चल नहीं सकता। मैं पिछले वर्ष दीपावलीपर दरचिन था और आपने कदाचित् सुना होगा कि पिछले वर्ष हिमपात कार्तिकमें ही प्रारम्भ हो गया था।'

'हम जिस दिन मानीथंगा पहुँचे थे, उसी दिन यह तिब्बती, जिसके तंबूके पास हम रुके थे, वह अपने फाँचे

(भेड़ोंपर नमक आदि लादनेकी ऊनी थैलियाँ) लेकर लौटा था। पिछले हिमपातमें उसकी तीन सौ भेड़ें और दो नौकर मारे गये।' मैंने जो सुना था, वही सुना दिया। हम पैदल ही चल रहे थे। तीर्थपुरीसे जो याक मिले थे भाड़ेपर, वे केवल मानीथंगातकके लिये थे। वे लौट चुके थे। मौसमसे पूर्व आनेके कारण अभी मार्ग खुला नहीं था। हम पहले यात्री थे। हमारे साथ डेढ़-दो सौ भेड़ें लेकर, उनपर नमक लादकर चार तिब्बती चल रहे थे। वे भारतीय बस्ती मिलममें नमक देकर अन्न लेंगे और लौटेंगे। उनकी पाँच भेड़ोंपर मेरा सामान—तंबू आदि लदा था।

यहाँ इतना और बता दूँ कि कैलास-मानसरोवर अञ्चलमें न नगर हैं न ग्राम। दरचिन, तीर्थपुरी, खिङ्-लुङ—जैसे कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ पर्वतोंमें बुद्ध-मन्दिर हैं। उनके पास ही बहुत-सी गुफाएँ हैं। इन गुफाओंमें यहाँके लोग अपना सामान रखते हैं। शीतकालमें उनमें अपने पशुओंके साथ रहते हैं। शेष समय वे तंबुओंमें घूमते हुए बिताते हैं। अपने याक और भेड़ें लिये वे घूमते रहते हैं। मानीथंगा, थिरचिन आदि ग्राम नहीं, इन चरवाहों तथा यात्रियोंके पड़ावके स्थान हैं। वे कभी सुनसान रहते हैं और कभी वहाँ तंबुओंके ग्राम बस जाते हैं।

'आपने ध्यान नहीं दिया, वह तिब्बती मुझे देखकर चौंका था। वह मेरे आनेसे संतुष्ट नहीं था। मैं उसकी भेड़ोंवाले दलके साथ ही पिछले वर्ष भारतके लिये चला

था।' स्वामीजीने बताया।

'वह कहता था कि यह लामा अपशकुन है। इसके साथ मत जाओ।' दिलीपसिंहने हमें बताया। वहाँ मानीथंगामें तिब्बती और दिलीपसिंहमें बातें बहुत हुई ; किंतु वहाँ हमें दिलीपसिंहने कुछ नहीं कहा था। तिब्बती भाषामें हम भला, क्या समझते। हमें तो वह तिब्बती भला लगा था। उसने हमारे तंबू खड़े करनेमें सहायता दी। हमारे यहाँ अग्नि जला दी और हमारे लिये मक्खन पड़ी नमकीन, तिब्बती चाय झटपट बनवा लाया था अपने तंबूमें-से।

'आ बचे कैसे ?' कुछ रुककर दिलीपसिंहने फिर पूछा।

'कुछ आगे चलो !' पता नहीं स्वामीजी क्यों गम्भीर हो गये थे।

× × ×

यह क्या है दिलीपसिंह ?' मैं ठिठककर खड़ा हो गया था। मार्गके पास ही थोड़ी-थोड़ी दूरपर बकरियों-भेड़ोंकी ठठरियाँ पड़ी थीं। उनमें अब केवल हड्डी थी। दो मनुष्य-कङ्काल भी दीखे। उनके आस पास बहुतसे फाँचे थे, कपड़े थे और स्थान-स्थानपर प्रायः बकरियोंके कङ्काल-के पास ऊनकी बड़ी-बड़ी गोलियाँ थीं। वे कुछ चपटी थीं। उनके ढेर और उनकी यह गोल-चपटी आकृति···।

'बकरियाँ-भेड़ें हिममें दब गयीं। उनको जब कुछ

भोजन नहीं मिला, तब उन्होंने समीपकी भेड़ या बकरी-का ऊन खा लिया। वह ऊन उनकी आँतोंमें जाकर ऐसे गोले बन गया। अब मांस तथा आँतें तो गल गयीं, वन्य पशु-पक्षी खा गये, किंतु आँतोंसे निकले ये ऊनके गोले पड़े हैं।' दिलीपसिंहने जो कुछ बताया, उसका स्मरण आज भी रोमाञ्चित कर देता है। हम कुछ अधिक वेगसे चलने लगे। संयोगवश बादल हट गये थे। हिमपात कुछ समयके लिये तो टल गया था।

'उस दिन—उस भयंकर दिन मैं इस अभागे यूथके साथ था।' संन्यासीजीने कुछ आगे जाकर अपनी गम्भीरता तोड़ी। 'मानीथंगासे जब ये चरवाहे चले थे, तब इनके लामा ने कहा था कि अभी बीस दिन हिमपात नहीं होगा। मैं तो अकस्मात् इनके साथ हो गया।'

दिलीपसिंह और पास आ गया था। मैं भी उत्सुक था संन्यासीजीकी बात सुननेके लिये। संन्यासीजी कह रहे थे—'जब हम छिरचिनसे चले, तभी घने बादल घिर आये थे। तिब्बती चरवाहे बराबर लामाका नाम लेते थे और कहते थे—उनका लामा पत्थरमें पंजे मारकर चिह्न बना देता है। वह वर्षा, आँधी, हिमपात—सबको रोक देता है। इन बादलोंको वह अवश्य भगा देगा। उन चरवाहोंमें एक अधूरी हिंदी बोल लेता था। मुझे वह पता नहीं क्यों मानता भी बहुत था। कई बार उसने मुझे अपनी 'छिरपी' (सूखे मट्ठे का खण्ड) खिलाया।'

एक बार संन्यासीजीने कैलास की ओर मुड़कर देखा और बोले—'सहसा हिम-शर्करा प्रारम्भ हुई। बकरियाँ

और भेड़ें चिल्लाने लगीं और चरवाहे भयातुर हो उठे। इसके पश्चात् हिमपात प्रारम्भ हो गया। हम देख भी नहीं सकते थे कि हमारे आगे दो फुटपर मनुष्य है या पर्वत। मेरे साथके लोगोंका क्या हुआ—मुझे पता नहीं।'

'आप बचे कैसे ?' दिलीपसिंहने पूछा।

'मुझे मारता कौन ?' संन्यासीने कहा—'मुझे तो न कोई भय लगा न घबराहट हुई। मैं चल रहा था—चलता रहा। मार्ग दीख नहीं रहा था, मार्ग देखनेका प्रश्न भी नहीं था। जहाँ गड्ढेमें गिरता प्रतीत होता था या सिर टकराता था—जिधर मुड़ना सम्भव होता था मुड़ जाता था।'

'अद्भुत हैं आप।' मैंने कहा।

'इसमें अद्भुत बात क्या है ?' संन्यासीने सहज भावसे कहा—'जो भगवान् शंकर कैलासके अधिष्ठाता हैं, वे मैदानमें रक्षा करते हैं और पर्वतके हिमपातमें नहीं करते ? मैं उनके आश्रमपर आया था—कैलास आया था मैं। उन देव-देवेश्वरके दर्शनार्थीको मार कौन सकता था ? हिमपात हुआ—होता रहा। मेरे पैर एक स्थानपर फिसले और पता नहीं मैं कितने नीचे लुढ़क गया। कई बार लुढ़का। कई बार हिममें लुढ़कनेपर ढक गया और उठा। बड़ा आनन्द आया उस दिन। पर्वतीय पिताका जाग्रत् स्वरूप और उनका क्रीड़ा-वैभव देखा मैंने।'

संन्यासीजीने अपनी बात समाप्त की—'जब मैं अन्तिम बार लुढ़का तो किसी जलस्रोतमें पड़ गया। मेरी चेतना जलकी शीतलता और लहरोंने छीन ली। जब

मुझे फिर शरीरका भान हुआ, तब कुछ भेड़वाले मुझे दंगसे आगे अग्नि जलाकर सेंक रहे थे। उन्होंने मुझे धारासे निकाला था, उन्हें सन्देह हो गया था कि मैं जीवित हूँ।'

ये संन्यासीजी केवल दुंगतक हमारे साथ आये। मिलमसे भी पूर्वमार्गमें ही वे हमसे पृथक् हो गये। परन्तु उनकी एक बात स्मरण करने योग्य है। वे कहा करते थे—'मर्त्यका भरोसा क्या ? भरोसा भगवान्का। उसका भरोसा, जो सदा है—सदा साथ है।'

मनुष्य क्या कर सकता है ?

'पशुपतिनाथ ! मुझ अज्ञानीको मार्ग दिखाओ !' उस ठिगने किन्तु सुपुष्ट-शरीर वृद्धके नेत्र भर आये। उसके भव्य भालपर कदाचित ही किसीने कभी चिन्ता-की रेखा देखी हो। विपत्तिमें भी हिमालयके समान अडिग यह गौरवर्ण, छोटे नेत्र एवं कुछ चपटी नाकवाला नैपाली वीर आज कातर हो रहा है—'भगवान ! मुझे कुछ नहीं सूझता कि क्या करूँ। मनुष्यको तुम क्यों धर्म-संकटमें डालते हो ? तुम्हें पुकारना छोड़कर मनुष्य ऐसे समयमें और क्या करे ? तुम बताओ, मुझे क्या करना चाहिये ?'

आँसूकी बूँदें चौड़ी हड्डीवाले सुदृढ़ कपोलोंपरसे लुढ़ककर उजली मूँछोंमें उलझ गयीं। अपनी हुंकारसे वनके नृशंस व्याघ्रको भी कम्पित कर देनेवाला वज्र-पुरुष आज बालकके समान रो रहा था। उसकी कठोर कायाके भीतर इतना सुकोमल हृदय है—उससे परिचित प्रत्येक व्यक्ति इसे जानता है।

नरेन्द्रसिंह वीर है—मृत्युके मुखमें भी पैर रखकर खुखड़ीके दो हाथ झाड़ देनेका हौसला रखता है हृदयमें, लेकिन धार्मिक है। आप उसे धर्मभीरु भी कहें तो चलेगा और आज वह धर्मभीरु धर्म-संकटमें पड़ गया है। अब

अपने पशुपतिनाथको—नैपालके आराध्यदेवको पुकार रहा है वह।

'एक ब्राह्मण आशा लेकर गोरखेकी शरण आया है। उसने मुझपर विश्वास किया है। वह दुखी है—विवश है। दो पुत्रियाँ हैं उसके घरमें विवाह करने योग्य और घरपर पुरुष तो दूर, उसकी पत्नी भी जीवित नहीं। फफक पड़ा नरेन्द्रसिंह—'वह मारा जा सकता है। क्रूर विदेशी उसे कुत्तेके समान गोलीसे भून देंगे। एक गोरखा यह विश्वासघात करे? नरेन्द्र यह ब्रह्महत्या ले? मेरे नाथ! तुम कहाँ सो गये हो? समाधि छोड़ दो आशु-तोष? इस सेवकको मार्ग दिखलाओ।'

'मैं इस चौकीका रक्षक हूँ। चौकीके सैनिक मेरे भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। मेरे महाराज मुझपर विश्वास करते हैं। एक नैपाली अपने देशसे अपने महाराजसे विश्वासघात करे?' नरेन्द्रसिंहने दोनों हाथ सिरपर पूरे वेगसे पटक दिये—'फिरंगी पता नहीं क्या चाहते हैं। वे रहस्य पाकर पता नहीं क्या अनर्थ करेंगे। चौकीके सैनिक भुन जायँगे और उन पिशाचोंके लिये गौ, ब्राह्मण, देवता—वे तो हैं ही पिशाच। सतियोंका सतीत्व उनके लिये विनोदका साधन है। मैं निमित्त बनूँ उनकी पैशाचिकताको सफल बनानेमें? मैं अपने देशसे, महा-राजसे, अनुगतोंसे, समाजसे, और धर्मसे ही विश्वासघात करूँ?'

वृद्ध जैसे पागल हो जायगा। उसने मस्तक पटक दिया पृथ्वीपर—'पशुपतिनाथ! तुम मुझे मार्ग नहीं

दिखलाते तो मर जाने दो !' अपनी खुखड़ी उसने म्यान-से खींच ली। ललाटपर एक लाल गोल सूजन आ गयी थी; किन्तु जो मृत्युका आलिंगन करने जा रहा है, उसे उसका क्या पता लगना था।

'गायें मारी जायँगी—नैपालकी इस पावन धरापर, भगवान तथागतके चरणोंसे पूत हुई इस पृथ्वीपर गोरक्त गिरेगा। मेरी बेटियों-बहुओंका सतीत्व फिरंगी सिपाही लूटेंगे या वे अपनी रक्षाके लिये खुखड़ी खोस लेंगीं हृदयमें।' नरेन्द्रसिंहके हाथसे अपनी खुखड़ी छूट गिरी —'मुझे मरनेका अधिकार कहाँ है। मेरी मृत्युका अर्थ भी तो शत्रुको सुविधा देना ही होगा। हाय ! आज यह अधम मर भी नहीं सकता है।'

'अतिथिके साथ विश्वासघात—ब्राह्मणकी हत्या ! उसकी वे कुमारी कायाएँ !' नरेन्द्रसिंहकी आँखोंके आगे अन्धकार छा गया। उसने उस स्वरमें, जिसमें किसी नृशंस हत्यारेके छुरेसे आहत मरणोन्मुख प्राणी चीत्कार करता है—चीत्कार की—'पशुपतिनाथ !'

आर्त प्राणोंकी कातर पुकार वह आशुतोष चन्द्रमौलि न सुने—ऐसा कभी हुआ है ? जिस दिन वह गंगाधर सच्ची पुकार सुननेके लिए भी समाधिमग्न बनेगा, सृष्टि रहेगी कितने पल ?

नरेन्द्रके मुखपर शान्ति आयी ! उसने नेत्र पोंछ लिये हाथोंसे ही। खुखड़ी उठाकर म्यानमें रख ली। उसके हृदयके पशुपतिनाथने उसे प्रकाश दे दिया था। दृढ़ निश्चय था उसके मुखपर।

'पण्डितजी ! आप मुझे क्षमा करें।' जब वह अतिथि-के सम्मुख आया, उसके स्वरमें कोई हिचक या कम्पन नहीं थी। 'आपके खींचे मानचित्र मैं आपको लौटा नहीं सकूँगा। आपको काठमाण्डू जाना है।'

'नरेन्द्रसिंह ! तुम विश्वासघात करोगे ? तुम ?' ब्राह्मणके नेत्र फटे-फटे हो गये। उसका मुख भयसे सफेद पड़ गया—'फिरंगी मेरी कन्याओंकी क्या दुर्गति करेगा—सोचो तो तुम। मैं यहीं प्राण दे दूँगा। तुम्हें ब्रह्महत्या लेनी है ?'

'मैं विवश हूँ।' नरेन्द्रसिंहने मुख नीचे झुका लिया। ब्राह्मणके स्वरमें जो प्राण दे देनेकी दृढ़ता थी—दूसरा कोई मार्ग भी नहीं था उनके लिये। लेकिन नरेन्द्रने उन्हें उसी स्थिर स्वरमें कह दिया—'यहाँ आपको प्राण देने नहीं दिया जा सकता। काठमाण्डू तो जाना ही है आपको। पशुपतिनाथको प्रणाम करके जो कुछ करना आप चाहें—स्वतन्त्र रहेंगे।'

× × ×

(२)

अंग्रेजोंने नेपालपर चढ़ाई तो कर दी ; किंतु उन्हें अब छठीका दूध याद आ रहा है। उनकी बंदूकोंकी पिट्-पिट् गोरखा वीरोंके पत्थर-कलेके आघातके सम्मुख व्यर्थ सिद्ध हो रही हैं। इन जंगलों और पहाड़ोंमें आकर फिरंगी अपनी हेकड़ी भूल गया है। अब तो उसे यह

समझ आने लगी है कि किसी प्रकार सम्मान सुरक्षित रखकर सन्धि हो जाना भी बड़ी बात है।

'चाहे जो हो कुछ चौकियोंपर अधिकार स्थापित ही करना होगा।' स्थानीय कर्नल क्या करे ? ऊपरवाले तो आदेश देना ही जानते हैं। यहाँ वस्त्रोंके शिविरोंमें रात-दिन रहना पड़े और सिरपर पत्थर-कलेसे छूटे पाषाणखण्ड तोपोंके गोलोंकी भाँति घहरायँ तो पता लगे।' लेकिन कर्नल चाहे जितना असंतुष्ट होकर बड़बड़ाये और पैर पटके; ऊपरवालोंके आदेशको पूरा किये बिना उसके लिये भी कोई मार्ग नहीं है।

'हमें एक मानचित्र मिल जाय इस अगली गोरखा-चौकीका।' कर्नल चिन्तामें पड़ गया। सामने छोटी-सी पहाड़ी है। घना जंगल है। जब सेना आगे बढ़नेका प्रयत्न करती है, पहाड़ीके ऊपरसे पत्थरोंकी बौछार प्रारम्भ हो जाती है। कुछका कचूमर निकल जाता है। अपना-सा मुँह लेकर लौटना पड़ता है। छोटा-सा घेरा है पहाड़ीपर बहुत छोटे घर जितना। उसमें कितने गोरखे सैनिक होंगे ? कहाँसे वे जल और भोजन पाते हैं ? उनका मार्ग क्या है ?'

इतिहास देशके इस दुर्भाग्यका साक्षी है कि देशवासी ही सदा आक्रमणकारियोंके सहायक हो गये हैं। उस अंग्रेज टुकड़ीके साथ संख्यामें देशी सैनिक ही अधिक थे। उन्होंने पता लगाना प्रारम्भ किया। अन्तमें कर्नलको सूचना मिली—'नीचे गाँवमें एक ब्राह्मण हैं। वे मानचित्र बनाना अच्छा जानते हैं। कई नरेशोंके यहाँ इस कामपर

रह चुके हैं। इस समय अर्थ-संकटमें हैं। अगली पहाड़ीके पीछे जो गाँव है, उसका सरदार पण्डितजीको बहुत मानता है। काठमाण्डूतक भी उनका आना-जाना है।'

'हम तुम्हें बहुत रुपया देंगे—दो हजार रुपया।' कर्नलके आदेशसे पण्डितजी बुलवाये गये—पकड़ मँगाये गये कहना चाहिये। 'तुम इस पहाड़ी और उसके आस-पासका एक मानचित्र हमें बनाकर दे दो। हमारी बात नहीं मानना बहुत बुरा होगा।'

'मैं इस पहाड़ीपर या उसके मार्गसे कभी नहीं गया हूँ।' पण्डितती राजदरबारोंके अनुभवी थे। कर्नल कितने अत्याचार कर सकता है, यह जानना उनके लिये कठिन नहीं था। धनका लोभ—लेकिन दो-दो कन्याओंका विवाह दरिद्रताके कारण एक सम्मान्य व्यक्तिके यहाँ रुका हो और उसे लोभ हो जाय तो दोष कैसे दिया जा सकता है। इतनेपर भी पण्डितजी पिंड छुड़ाना ही चाहते थे।

'तुम अब जा सकते हो। तुम्हें जाकर मानचित्र लाना ही है।' कर्नलने धमकी दी। 'तुम्हारे घरपर हमारा एक सैनिक बराबर रहेगा। परसों शामतक तुम नहीं आ गये मानचित्र लेकर तो हम तुम्हारे घरमें आग लगवा देंगे और तुम्हारी लड़कियोंको यहाँ पकड़ मँगायेंगे।'

कर्नलकी धमकीमें जो क्रूरता—पैशाचिकता थी, उसने ब्राह्मणको कँपा दिया। मस्तक झुकाकर वे चले गये। घर जानेका उनमें साहस नहीं था। कर्नलने उन्हें कागज और पेंसिल पकड़ा दी थी। वनपथ उनके लिये

अपरिचित नहीं था।

दुर्भाग्य आता है तो सब ओरसे आता है। पण्डितजी-ने लगभग पूरा मानचित्र घूम-घामकर बना लिया था ; किंतु उन्हें एक गोरे सैनिकने देख लिया। वह पहाड़ी चौकीसे झरनेपर सम्भवतः जल लेने आया था।

पापमें साहस नहीं हुआ करता। यह भी हो सकता है कि गोरखे सैनिकने कुछ न समझा हो—उसने तनिक भी शङ्का न की हो। उसने पण्डितजीको पहचानकर स्वाभाविक ढंगसे ही पुकारकर प्रणाम किया हो। लेकिन पण्डितजी मानचित्रकी रेखाएँ स्पष्ट कर रहे थे वृक्षकी छायामें बैठे। सैनिकका शब्द सुनते ही उनका तो रक्त सूख गया। कागज समेटा और भाग खड़े हुए। उन्हें लगा कि सैनिकने उन्हें ही नहीं, उनके कामको भी देख लिया है। उसके प्रणाममें उन्हें स्पष्ट व्यंग्यका स्वर लगा। वह अपनी खुखड़ी या पत्थर-कला लेने गया होगा। अपने नायकको कहने या उनकी अनुमति लेने गया होगा। वह और उसके साथी आते होंगे।' बेचारे पण्डित-जी अपनी आशङ्काके कारण ही अधमरे हो गये थे।

'नरेन्द्रसिंह ! मैं तुम्हारी शरण हूँ। मेरी रक्षा करो।' पासके गाँवमें पण्डितजी भागते-दौड़ते पहुँच गये। उनका शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था। वे हाँफ रहे थे और भयसे काँप भी रहे थे—'तुम वीर हो। ब्राह्मणकी रक्षा तुम्हारे हाथमें है।'

'आप इतने भयभीत क्यों हैं ?' नरेन्द्रसिंहने पूछा—'फिरंगी तो इधर नहीं आ रहे हैं ?'

'फिरंगी नहीं, तुम्हारे सैनिक।' पण्डितजीने सब बातें सच-सच बता दीं।

'मानचित्र देखूँ तो।' नरेन्द्रने मानचित्र ले लिया; किंतु उसके मनमें ब्राह्मणसे पूरा विवरण सुनकर तुमुल द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया। वह घरके भीतर जाते-जाते बोला—'आप विश्राम करें। यहां कोई आपको छू नहीं सकता।'

ब्राह्मणने संतोषकी साँस ली। वे पास बिछे पलंगपर बैठ गये। लेकिन नरेन्द्रसिंह—उसे मार्ग नहीं सूझ रहा था। वह व्याकुल हो रहा था—क्या करे वह? अब उसका कर्तव्य क्या है? यह ब्राह्मण—यह अतिथि—यह शरणागत ···।

× × ×

(३)

'आप ब्राह्मण हैं, आपको मैं और क्या कहूँ।' हिंदू नरेशोंका औदार्य ही तो है जो वे देवताओंके लिये भी कभी वन्दनीय माने जाते हैं। अपराधी ब्राह्मण देवता जब तीन सरकार (नेपालके प्रधान मन्त्री) के सामने पहुँचाये गये, तब राणाने उन्हें उठकर प्रणाम किया। 'आशा है मार्गमें आपको कष्ट नहीं हुआ होगा। सैनिकोंने आपके साथ सम्मानका व्यवहार किया होगा। आप हमें क्षमा करें इस अविनयके लिये। नायक नरेन्द्रसिंहका पत्र है कि वे यहाँ कल प्रातः पहुँचेंगे। तबतक आप हमारा आतिथ्य ग्रहण करें।'

'आप मुझे प्राणदण्ड नहीं देंगे—यह मैं जानता हूँ। ब्राह्मण अवध्य है न ! लेकिन मैं तो मर चुका। यह आपके सामने मेरा प्रेत खड़ा है। इसे मर-मिटनेके लिये स्वतन्त्र कर दीजिये !' ब्राह्मणके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे—'मेरा सम्मान नहीं रहा, मेरी लड़कियाँ फिरंगी ले ही गया होगा और वे पिशाच हाय भगवान् ! मैं अब क्यों जीवित हूँ ?' दोनों हाथों अपने केश नोंच लिये ब्राह्मणने।

'आपकी पुत्रियाँ··· ? फिरंगी··· ?' महाराणा रुक-रुककर भी पूरे वाक्य बोल नहीं सके। स्थिति समझते ही उनके नेत्र भी अंगार हो उठे ; किंतु दो ही क्षणमें शान्त हो गये वे। 'महाराज ! नरेन्द्रसिंहको आपके साथ आना चाहिये था। वह नहीं आया है। कल प्रातः वह यहाँ पहुँचेगा—उसने लिखा है तो पहुँचेगा ही। अबतक उसने एक बार भी झूठा आश्वासन नहीं दिया है। मैं समझता हूँ कि आपकी पुत्रियाँ सुरक्षित हैं।'

'सुरक्षित हैं वे ?' ब्राह्मणको विश्वास नहीं हुआ।

'मैं भी केवल अनुमान कर रहा हूँ। कल प्रातः तक प्रतीक्षा कीजिये।' राणाने गम्भीरतासे कहा—'नरेन्द्र-सिंह चौकीसे एक भी सैनिक हटा नहीं सकता। ऊपरके आदेशके बिना इतना दुस्साहस वह नहीं करेगा। उसके पास गाँवमें कुल दस युवक और हैं और फिरंगी सेना बहुत बड़ी है।'

'वह क्या मेरी पुत्रियोंको निकाल लानेवाले हैं ?' ब्राह्मणको इसकी तनिक भी सम्भावना नहीं दीखती थी।

'भगवान् पशुपतिनाथ जानते हैं।' राणाके पास भी कोई उत्तर नहीं था।

× × ×

नरेन्द्रसिंह दूसरे दिन प्रातःकाल काठमाण्डू पहुँचे तो पहाड़ी टट्टुओंपर उनके साथ ब्राह्मणकी दोनों पुत्रियाँ थीं।

'धन्य वीर!' ब्राह्मण दौड़ा भुजाएँ फैलाकर।

'यह सम्भव कैसे हुआ?' राणाने पूछा।

'मुझे भी पता नहीं।' नरेन्द्रसिंहने भरे नेत्रोंसे कहा—'मैं प्राण दे सकता था, वही देने गया था। मेरे दस साथी क्या कर लेते? लेकिन गाँव तक पहुँचनेमें शत्रु मिला ही नहीं। वह सो रहा होगा। उसके सैनिक दौड़े तब जब हम दो तिहाई मार्ग लौटते समय पार कर चुके थे। फिर हमारे पत्थर-कलोंने मृत्युकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। करना तो जो कुछ था—पशुपतिनाथको करना था, मनुष्य क्या कर सकता है?

सच्ची पुकार

'तुम प्रार्थना करने आये थे अल्फ्रेड ?' सभ्यताके नाते तो कहना चाहिये था। 'मि० वुडफेयर' किंतु विल्सन राबर्टसें जो सहज आत्मीयता है अपने अल्प परिचितोंके भी प्रति, उसके कारण वे शिष्टाचारका पूरा निर्वाह नहीं कर पाते और न उसे आवश्यक मानते।

उसका पूरा नाम है अल्फ्रेड जॉन्सन वुडफेयर। चौंककर उसने पीछे मुड़कर देखा। समुद्र-किनारेके इस छोटेसे गाँवमें उसे जाननेवाला, उसका नाम लेकर पुकारनेवाला कौन है ? उसे यहाँ आये अभी दो ही सप्ताह तो हुए हैं और एक खेतोंमें फसल काटनेवाला मजदूर क्या इस योग्य है कि उसे लोग जानें और इतने स्नेहसे नाम लेकर पुकारें।

'ओह आप हैं।' अल्फ्रेड पूरा पीछे घूम गया और उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। विल्सनसे उसका घनिष्ट, परिचय है, यह तो वह नहीं कह सकता ; किंतु इस अलमस्त घुमक्कड़से कई बार पहले भी वह मिल चुका है। कई बार जब वह अपनी नौकापर समुद्रमें मजदूरी करने निकला—विल्सनकी नौका उसे मिली है। एक बार तूफानी रात्रिमें विल्सन उसकी झोंपड़ीमें अतिथि रह चुका है।

'मैं जानता था तुम यहाँ आओगे। अन्ततः आये न' विल्सन उसके बराबर आ गये हँसते हुए और उसका हाथ पकड़कर गिरजाघरकी सीढियाँ उसके साथ ही उतरने लगे। 'मनुष्य कैसा भी हो, कोई भी हो, अपने पिताके सामने आये बिना रह कैसे सकता है।'

वह देखता रहा इस सुसज्जित सम्मान्य यात्रीको। यात्री—विल्सन यात्री ही तो हैं। वे क्या करते हैं, कहाँ रहते हैं, यह सब तो वह जानता नहीं। जानता केवल इतना है कि वे सम्पन्न होनेके साथ अत्यन्त उदार हैं और पर्यटनका उन्हें व्यसन है। इस गाँवमें भी वे घूमते-घामते ही आ निकले होंगे। रविवारको प्रार्थना करके गाँवके अधिकांश वृद्ध स्त्री-पुरुष, जिनके साथ घरोंके बालक भी हैं, गिरजाघरसे बाहर जा रहे हैं। बहुत थोड़े गिने-चुने युवक प्रार्थना करने आते हैं, युवतियाँ उनसे कुछ ही अधिक आती हैं। तारुण्यका गर्व जब शिथिल पड़ने लगता है, तभी तो मनुष्यमें, जीवनके उस पार भी कुछ है यह झाँकनेकी समझदारी आती है।

'लेकिन अल्फ्रेड! मैं भूलता नहीं हूँ तो केवल बीस दिन पूर्व हम यहाँसे पर्याप्त दक्षिण समुद्रके वक्षपर मिले थे।' विल्सनको इसकी चिन्ता नहीं जान पड़ती कि उनके जैसे मूल्यवान् उज्ज्वल वस्त्रधारीको एक मजदूरका हाथ पकड़कर चलते देख पाससे जानेवाले वृद्ध और वृद्धाएँ किस प्रकार देखते हैं, किस प्रकार मुख सिकोड़ते हैं और परस्पर फुसफुसाकर क्या कहते हैं?

'तब मैं गोता लगानेको प्रस्तुत हो रहा था।' अल्फ्रेड-

ने इतनी देर बाद बोलना आवश्यक समझा। 'वही समुद्रमें मेरा अन्तिम गोता था और फिर जब मैं चल सकने योग्य हुआ, सीधे गिरजाघर पैदल चलकर गया। यद्यपि बहुत कष्ट हुआ उस दिन मुझे चलनेमें, किंतु बहुत आनन्द भी मिला मुझे। प्रार्थना तो उसी दिन मैंने की। अब तो लकीर पीट लेता हूँ।' वह पता नहीं क्या और कितनी बातें एक साथ बता जाना चाहता था, लेकिग उस दिनकी प्रार्थनाका स्मरण करके ही उसके नेत्र भर आये थे। रूमाल निकालकर खाँसनेका बहाना बनाया उसने और मुखको एक ओर घुमा लिया।

'मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। आज तो विश्रामका दिन है।' विल्सनने आमन्त्रणकी अपेक्षा नहीं की। जो व्यक्ति केवल बीस दिन पहले धर्म और आस्तिकताकी बात सुनकर ठठाकर हँस पड़ता था, जिसे सुरा···जाने दीजिये, किसीके दोषोंका वर्णन भी दोष ही है। इतना जानना पर्याप्त होना चाहिये कि अल्फ्रेड 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' के नियमको मानकर चलनेवाला था। वह मृत्युसे संग्राम करके अपनी जीविका प्राप्त करता था और उसे अपने उल्लासोंको प्राप्त करनेके लिये व्यय करनेमें संकोच नहीं था। वह कहा करता था—'धर्म तो कायर और अशक्त लोगोंके मनको संतोष देनेका बहाना है।' गिरजाघर वह क्यों जाय, जब कि वह उन भव्य भवनोंको जीवन-संग्राममें थके अपंग लोगोंके मिथ्या आश्वासन प्राप्त करनेका स्थान मानता है। वही अल्फ्रेड किसी दिनकी प्रार्थनाका स्मरण करके गद्गद हो उठे

बिना विशेष घटनाके यह कैसे सम्भव है। लेकिन यहाँ मार्गमें कुछ पूछना शिष्टता नहीं होगी।

'आप मेरे यहाँ चलेंगे ?' अल्फ्रेडने मुख घुमाकर देखा। 'अब मशीनोंने खेतमें काम करनेवाले घोड़ोंके अस्तबल खाली कर दिये हैं। बाहरसे आये मजदूरोंके साथ मुझे खेतके स्वामीने कृपा करके उनमेंसे एक छोटा स्थान ठहरनेको दे दिया है।'

'मेरे मित्र ! मैं भी मनुष्य हूँ—ठीक तुम्हारे समान मनुष्य।' विल्सनने उसके कंधेको थपथपा दिया। 'जब परमात्मा प्रत्येक स्थानपर है, हमें कहीं जानेमें संकोच क्यों होना चाहिये ?'

× × ×

(२)

'नित्यकी भाँति मैं उस दिन भी समुद्र-तलमें उतरा।' अल्फ्रेड बिछी हुई घासपर बैठा था और उसके पास ही विल्सन बैठे उसीकी ओर देख रहे थे। 'मेरे दोनों सहकारी बहुत सावधान और अपने कार्यमें कुशल थे। लेकिन गोताखोर तो प्रत्येक गोतेके समय मृत्युके मुखमें ही उतरता है और उसे केवल अपनी स्फूर्ति, प्रत्युत्पन्न बुद्धि तथा सतर्कतापर निर्भर करना पड़ता है।'

अल्फ्रेड मजदूर बननेसे पहले—अभी बीस दिन पहलेतक समुद्री गोताखोर था। समुद्रके गहरे तलमें

उतरकर मोतीके सीप उठा लाना ही उसका व्यवसाय था। सीपमें मोती है या नहीं, यह बात तो ऊपर आकर देखनेकी होती है। समुद्रतलमें तो यथाशीघ्र जो सीप मिलें, उन्हें समेटकर ऊपर आ जाना पड़ता है।

'मौसम अच्छा था। ऊपर चमकीली धूप निकल रही थी। जलके भीतर पर्याप्त दूरीतक इतना प्रकाश था कि मैं अपने आसपास दौड़ती-भागती छोटी-बड़ी मछलियों तथा तल प्रदेशकी अद्‌भुत लताओंको सरलतासे देख सकता था।' अल्फ्रेड बता रहा था—समुद्रतलमें जो सृष्टिकर्ताने उपवन लगा रखा है—कहीं-कहीं तो तल-प्रदेशके पौधे, घासें और लताएँ अद्‌भुत सुन्दर हैं। उस दिन मैं ऐसे ही एक मनोहर समुद्री उद्यानमें उतर पड़ा था।'

'वहाँ उद्यान-सौन्दर्य देखने जितना अवकाश और धैर्य रहता है ?' विल्सनने बीचमें पूछ लिया—'भय नहीं लगता ?'

'हमें सावधान रहना पड़ता है और शीघ्रता रहती है।' अल्फ्रेड तनिक हँसा—'लेकिन जो डरेगा, वह गोताखोर नहीं बन सकेगा और उद्यानको तो अपने बचावके लिये सावधानीसे देखते रहना पड़ता है ; क्योंकि हमारे सबसे भयंकर शत्रु उन पौधोंमें ही किसी पौधेके समान बने छिपे रह सकते हैं।'

'मुझे घोंघे बहुत दीखे और छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे जीवित चलते-फिरते शंख भी अधिक थे।' वह अपनी मुख्य बातपर आ गया। 'लेकिन आप जानते हैं कि मैं

घोंघे या शंख निकालना एकदम पसंद नहीं करता। मेरे अद्भुत वेशके कारण और अपने बीचमें मुझे अचानक आया देख मछलियोंमें हलचल मच गयी थी। उनमें-से अनेक मुझसे बार-बार टकरायीं। भयका कोई कारण नहीं था ; क्योंकि मैं जानता था कि समुद्री सिंह (शार्क) इस समुद्रमें बहुत थोड़ी हैं और उनके मिलने का समय दूसरा ही होता है।'

'मुझे धीरे-धीरे उतारा गया था। नीचे पहुँचकर मैं खड़ा हो गया और झुककर कुछ सीपोंको मैंने अपने झोलेमें झटसे डाल दिया।' विलसन उत्सुकतासे उसकी बातें सुन रहे थे। 'मैं बहुत प्रसन्न था, वहां पर्याप्त सीपें थीं। आजका गोता मुझे अच्छी रकम दे देगा। सहसा ऐसा लगा कि कोई कोमल गिलगिली वस्तु दाहिने पैरमें लिपट गयी है। मैं चौंका, बायें हाथका चाकू दाहिनेमें लेकर झुक गया। अष्टपदके दो पैर मेरे चाकूने काट दिये। इसी समय मुझे कसकर झटका लगा।'

'अष्टपद - समुद्रका सबसे भयंकर प्राणी और गोता-खोरोंका सबसे बड़ा शत्रु।' अल्फ्रेड सिहर उठा—'वह किसी भी चट्टानपर एक पौधेके समान जमा बैठा रहेगा या चट्टानके नीचेसे छिपा रहेगा। पता नहीं किस चट्टान-के नीचेसे निकलकर एक भयानक अष्टपदने अपने सूँड जैसे पैर मेरी कमर और कंधेमें लपेट दिये थे। उसकी दोनों आँखें मेरी आँखोंके सामने चमक रही थीं और वह दुष्ट अपनी चोंच मेरे मुखके पास ला रहा था। मेरे मुखसे भयके कारण चीख निकल गयी।'

'जैसे हाथी किसी बालकको सूँडमें पकड़कर झटके दे।' अल्फ्रेड दो क्षण रुक गया और फिर बोला—'वह दारुण माँसाहारी प्राणी मेरा मनोभाव समझ गया था। जब मैं अपना हाथ ऊपर समाचार देनेवाली रस्सी खींचनेको बढ़ाता था, वह मुझे भयंकर झटका देता था। मेरे मुखपर लगा भारी नकाब खिसक पड़ता था। मुझे भय था कि कहीं प्राणदायिनी वायु-नलिका (आक्सिजन ट्यूब) टूट न जाय। मेरा मुख और नाक स्थान-स्थानसे नकाबकी रगड़से छिल गये। उनमें असह्य वेदना होने लगी। बार-बार नकाब ठीक करनेको मैं विवश हो रहा था और कहीं भी तलभूमिपर पैर नहीं जमा पता था।'

'अष्टपदने मुझे एक और झटका कसकर दिया। मेरा पूरा ललाट और कपोल छिल गये। नकाब कंधेपर खिसक आया। मेरी नाकसे कुल चार इन्च दूर मुझे अष्टपदके क्रूर नेत्र चमकते दीखे। उसकी चोंच--उसकी रक्त-पिपासु चोंच निकट आ रही थी।' दीर्घश्वास ली अल्फ्रेडने –'नकाब ठीक करनेका समय भी, नहीं रह गया था। मैं निराश हो गया था। भयके कारण चीख पड़ा मैं –'हे भगवान्!' और फिर मुझे पता नहीं, क्या हुआ। मेरे नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया।'

× × ×

(३)

'मिस्टर विल्सन! एक बात अबतक मेरी समझमें

नहीं आती।' अल्फ्रेडने बीचमें दूसरी बात कही—'मुझे ठीक-ठीक स्मरण है कि अष्टपदके पहले ही झटकेमें चाकू मेरे हाथसे छूटकर गिर गया था। दुष्ट अष्टपद मुझे कई झटके—बीसों झटके बाद तक देता रहा। उसके वे पैर जो मेरी कमर और कंधोंको पकड़े थे, काटे कैसे गये ?'

'यह तुम्हारे सहायककी तत्परता होगी।' विल्सनने कहा।

'मेरा साहयक बहुत सावधान है। उसीकी सावधानी-ने मेरे प्राण बचाये। वह कहता है कि यद्यपि समुद्रतलसे उसे कोई संकेत नहीं मिला था; किंतु अपेक्षित समयसे अधिक देर लगते देख उसे आशङ्का हो गयी और वह स्वयं नीचे उतर पड़ा।' अल्फ्रेडने कहा—'मैंने उससे बार-बार पूछा है। वह कहता है कि उसने मुझे मूर्छित पाया। मेरी नकाब उसने ठीक की। मेरी कमर और कंधेमें अष्टपदके पैर ऊपर आनेतक लिपटे थे, किन्तु वे कटे हुए पैर थे। भारी अष्टपद सब पैरोंके कट जानेसे मेरे पैरोंके पास ही समुद्रतलमें तड़फड़ा रहा था।'

'तुम्हारा छूरा तुम्हारे सहायकको मिला ?'

'आप कहना चाहते हैं कि मूर्छित होते-होते मैंने ही अष्टपदके पैर काट दिये थे ?' अल्फ्रेडने मुख उठाकर देखा—'मिस्टर विल्सन ! मेरी स्मरण-शक्ति गोताखोर-की स्मरण शक्ति हैं। गोताखोरका हृदय, मस्तिष्क और स्नायु असाधारण पुष्ट होते हैं। मेरा छूरा मेरे सहकारी-को मिला ही नहीं। वह तो अब भी समुद्रतलमें पड़ा होगा।'

'तुमने अभी बताया है कि तुमने मूर्छित होते-होते कहा था 'हे भगवन् !' विल्सनके स्वरमें दृढ़ता और विश्वास था।

'और भगवान्ने मेरी रक्षा की !' अल्फ्रेडके नेत्र भर गये 'सचमुच भगवान्ने ही मेरी रक्षा की मि० विल्सन। मैं इतना घायल हो गया था कि छूरा मेरे हाथमें होनेपर भी मैं कुछ न कर पाता। मैं अपने सहकारी द्वारा जब ऊपर लाया गया, तब मेरा मुख रक्तसे लथपथ था। पूरे तीन दिनों बाद मैं उठकर चलने योग्य हुआ और तब सीधे गिरजाघर गया।'

'भगवान् तो सुनते हैं और रक्षा भी करते हैं; किंतु' विल्सन रुके दो क्षण 'किन्तु हम मनुष्य इतने भाग्यहीन हैं कि प्राण-संकटमें भी वे दयामय हमें स्मरण नहीं आते। उस समय भी हम अपने उस कृपालु पिताको पुकार नहीं पाते।'

'मैं नित्य पुकारता हूँ, प्रतिदिन पुकारता हूँ, तबसे दो रविवार मात्र पड़े हैं और दोनोंको गिरजाघर प्रार्थना करने गया हूँ।' अल्फ्रेडने बहते आँसू पोंछनेका कोई प्रयत्न नहीं किया– 'किन्तु मेरे मित्र ! अब मेरी पुकार वे दयालु पिता क्यों फिर नहीं सुनते ?'

'वे सुनते हैं– सुनते तो हैं, पर जब पुकार सच्ची हो।' विल्सनने दीर्घ श्वास लेकर कहा– 'वह समुद्र-तलकी तुम्हारी पुकार– बस, वैसी सच्ची पुकार वे सुनते हैं।'

भगवत्प्राप्ति

'मनुष्य-जीवन मिला ही भगवान्को पानेके लिए है। संसार भोग तो दूसरी योनियोंमें भी मिल सकते हैं। मनुष्यमें भोगोंको भोगनेकी उतनी शक्ति नहीं, जितनी दूसरे प्राणियोंमें है!' वक्ताकी वाणीमें शक्ति थी। उनकी बातें शास्त्रसंगत थीं, तर्कसम्मत थीं और सबसे बड़ी बात यह थी कि उनका व्यक्तित्व ऐसा था जो उनके प्रत्येक शब्दको सजीव बनाये दे रहा था। 'भगवान्को पाना है—इसी जीवनमें पाना है। भगवत्प्राप्ति हो गयी तो जीवन सफल हुआ और न हुई तो महान् हानि हुई।'

प्रवचन समाप्त हुआ। लोगोंने हाथ जोड़े, सिर झुकाया और एक-एक करके जाने लगे। सबको अपने-अपने काम हैं और वे आवश्यक हैं। यही क्या कम है जो वे प्रतिदिन एक घन्टे भगवच्चर्चा भी सुनने आ बैठते हैं। परन्तु अवधेश अभी युवक था, भावुक था। उसे पता नहीं था कि कथा पल्लाझाड़ भी सुनी जाती है। वह प्रवचनमें आज आया था और उसका हृदय एक ही दिनके प्रवचनने झकझोर दिया था।

सब लोगोंके चले जानेके बाद उसने वक्तासे कहा—'मुझे भगवत्प्राप्ति करनी है, उपाय बतलाइये।' वक्ता बोले- 'बस, भगवान्को प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा

होनी चाहिये, फिर घरके सारे काम भगवान्‌की पूजा बन जायँगे।' उसने कहा—'महाराज! घरमें रहकर भजन नहीं हो सकता। आप मुझे स्नेहवश रोक रहे हैं, पर मैं नहीं रुकूंगा।' इतना कहकर वक्ताको कुछ भी उत्तर देनेका अवसर दिये बिना ही युवक तुरन्त चल दिया।

'भगवानको पाना है—इसी जीवनमें पाना है।' सात्त्विक कुलमें जन्म हुआ था। पिताने बचपनसे स्तोत्र-पाठादिके संस्कार दिये थे। यज्ञोपवीत होते ही त्रिकाल-संध्या प्रारम्भ हो गयी, भले पिताके भयसे प्रारम्भ हुई हो। ब्राह्मणके बालकको संस्कृत पढ़ना चाहिये, पिताके इस निर्णयके कारण कालेजकी वायु लग नहीं सकी। इस प्रकार सात्त्विक क्षेत्र प्रस्तुत था। आजके प्रवचनने उसमें बीज वपन कर दिया। अवधेशको आज न भोजन रुचा, न अध्ययनमें मन लगा। उसे सबसे बड़ी चिन्ता थी—उसका विवाह होनेवाला है। सब बातें निश्चित हो चुकी हैं। तिलक चढ़ चुका है। अब वह अस्वीकार करे भी तो कैसे और—'भगवान्‌को पाना है, इस बन्धनमें पड़ा तो पता नहीं क्या होगा।

दिन बीता, रात्रि आयी। पिताने, माताने तथा अन्य कईने कई बार टोका—'अवधेश! आज तुम खिन्न कैसे हो?' परन्तु वह, किसीसे कहे क्या। रात्रिमें कहीं चिन्तातुरको निद्रा आती है। अन्तमें जब सारा संसार घोर निद्रामें सो रहा था, अवधेश उठा। उसने माता-पिताके चरणोंमें दूरसे प्रणाम किया। नेत्रोंमें अश्रु थे; किंतु घरसे वह निकल गया।

'अवधेशका स्वास्थ्य कैसा है ?' प्रातः जब पुत्र नित्य-की भाँति प्रणाम करने नहीं आया, तब पिताको चिन्ता हुई।

'वह रात बाहर नहीं सोया था ?' माता व्याकुल हुई। उन्होंने तो समझा था कि अधिक गरमीके कारण वह बाहर पिताके समीप सोया होगा।

पुत्रका मोह—कहीं वह स्वस्थ, सुन्दर, सुशील और गुणवान् हो; मोह तो माता-पिताको कुरूप, कुपुत्र, दुर्व्यसनी पुत्रका भी होता है। विद्या-विनयसम्पन्न युवक पुत्र जिसका चला जाय, उस माता-पिताकी व्यथाका वर्णन कैसे किया जाय। केवल एक पत्र मिला था - 'इस कुपुत्र-को क्षमा कर दें ! आशीर्वाद दें कि इसी जीवनमें भगवत्प्राप्ति कर सकूँ।'

× × ×

'आपने यहाँ अग्नि क्यों जलायी ?' वनका रक्षक रुष्ट था—'एक चिनगारी यहाँ सारे वनको भस्म कर सकती है।'

'रात्रिमें वन-पशु न आवें इसलिये !' अवधेश—अनुभवहीन युवक, वह सीधे चित्रकूट गया और वहाँसे आगे वनमें चला गया। उसे क्या पता था कि पहले ही प्रातःकाल उसे डाँट सुननी पड़ेगी। अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा उसने—'मैं सावधानीसे अग्नि बुझा दूँगा।'

'बिना आज्ञाके यहाँ अग्नि जलाना अपराध है !'

वनके रक्षकने थोड़ी देरमें ही अवधेशको बता दिया कि भारतके सब वन सरकारी वन-विभागद्वारा रक्षित हैं। वहाँ अग्नि जलानेकी अनुमति नहीं है। वहाँके फल-कन्द सरकारी सम्पत्ति हैं और बेचे जाते हैं। वनसे बिना अनुमति कुछ लकड़ियाँ लेना भी चोरी है।

'हे भगवान् !' बड़ा निराश हुआ अवधेश। वनमें आकर उसने देखा था कि उसे केवल जंगली बेर और जंगली भिंडी मिल सकती है। वह समझ गया था कि ये भी कुछ ही दिन मिलेंगे ; किंतु वैराग्य नवीन था। वह पत्ते खाकर जीवन व्यतीत करनेको उद्यत था, परन्तु वनमें तो रहनेके लिए भी अनुमति आवश्यक है। आज कहीं तपोवन नहीं हैं।

'आप मुझे क्षमा करें ! मैं आज ही चला जाऊँगा।' वन-रक्षकसे उसने प्रार्थना की। वैसे भी जंगली भिंडी और जंगली बेरके फलके आहारने उसे एक ही दिनमें अस्वस्थ बना दिया था। उसके पेट और मस्तकमें तीव्र पीड़ा थी। लगता था कि उसे ज्वर आनेवाला है।

'आप मेरे यहाँ चलें !' वन-रक्षकको इस युवकपर दया आ रही थी। यह भोला बालक तपस्या करने आया था—कहीं यह तपस्याका युग है। 'आज मेरी झोपड़ीको पवित्र करें।'

अवधेश अस्वीकार नहीं कर सका। उनका शरीर किसीकी सहायता चाहता था। उनके लिए अकेले पैदल वनसे चित्रकूट बस्तीतक जाना आज सम्भव नहीं रह गया था। 'यदि ज्वर रुक गया—कौन कह सकता है

कि वह नहीं रुकेगा। ' अवधेश तो कल्पनासे ही घबरा गया। उसने सोचा ही नहीं था कि वनमें जाकर वह बीमार भी पड़ सकता है।

× × ×

'आप मुझे अपनी शरणमें ले लें।' बढ़े केश, फटी-सी धोती, एक कई स्थानोंसे पिचका लोटा—युवक गौरवर्ण है, बड़े-बड़े नेत्र हैं; किन्तु अत्यन्त दुर्बल है। सम्भ्रान्त कुलका होनेपर भी लगता है कि निराश्रित हो रहा है। उसने 'महात्माके चरण पकड़ लिये और उनपर मस्तक रखकर फूट-फूटकर रोने लगा।'

'मुझे और सारे विश्वको जो सदा शरणमें रखता है, वहीं तुम्हें भी शरणमें रख सकता है।' ये महात्माजी प्रज्ञा-चक्षु हैं। गङ्गाजीमें नौकापर ही रहते हैं। काशीके बड़े-से-बड़े विद्वान् भी बड़ी श्रद्धासे नाम लेते हैं इनका। इन्होंने युवकको पहचाना या नहीं, पता नहीं किंतु आश्वासन दिया—'तुम पहले गङ्गास्नान करो और भगवत्प्रसाद लो। फिर तुम्हारी बात सुनूँगा।'

'आप मुझे अपना लें! मेरा जीवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है!' युवक फूट-फूटकर रो रहा था 'मुझे नहीं सूझता कि मुझे कैसे भगवत्प्राप्ति होगी।'

'तुम पहले स्नान-भोजन करो।' महात्माने बड़े स्नेह-से युवककी पीठपर हाथ फेरा—'जो भगवान्को पाना चाहता है, भगवान् स्वयं उसे पाना चाहते हैं। वह तो

भगवान्‌को पायेगा ही।'

युवकने स्नान किया और थोड़ा-सा प्रसाद शीघ्रतापूर्वक मुखमें डालकर गंगाजल पी लिया। उसे भोजन-स्नानकी नहीं पड़ी थी। वैराग्य सच्चा था और लगनमें प्राण थे। वह कुछ मिनटोंमें ही महात्माजीके चरणोंको पकड़कर उनके समीप बैठ गया।

'पहले तुम यह बताओ कि तुमने अबतक किया क्या?' महात्माजीने तनिक स्मितके साथ पूछा।

'बड़ा लम्बा पुराण है!' अवधेश—हाँ, वह युवक अवधेश ही है—यह आपने समझ लिया होगा। उसने अपनी बात प्रारम्भ की। उसने बताया कि वह खूब भटका है इधर चार वर्षोंमें। उसे एक योगीने नेती, धोती, न्यौली, ब्रह्मदाँतौन तथा अन्य अनेक योगकी क्रियाएँ करायीं। उन क्रियाओंके मध्य ही उसके मस्तकमें भयंकर दर्द रहने लगा। बड़ी कठिनाईसे एक वृद्ध संतकी कृपासे वह दूर हुआ। उन वृद्ध संतने योगकी क्रियाएँ सर्वथा छोड़ देनेको कह दिया।

'ये मूर्ख!' महात्माजी कुछ रुष्ट हुए—'ये योगकी कुछ क्रियाएँ सीखकर अपने अधूरे ज्ञानसे युवकोंका स्वास्थ्य नष्ट करते फिरते हैं। आज कहाँ हैं अष्टाङ्गयोगके ज्ञाता। यम-नियमकी प्रतिष्ठा हुई नहीं जीवनमें और चल पड़े आसन तथा मुद्राएँ कराने। असाध्य रोगके अतिरिक्त और क्या मिलता है इस व्यायामके दूषित प्रयत्नमें।'

'मुझे एकने कान बंद करके शब्द सुननेका उपदेश

दिया।' अवधेशने महात्माजीके चुप हो जानेपर बताया—'एक कुण्डलिनी योगके आचार्य भी मिले। मुझे घनगर्जन भी सुनायी पड़ा और कुण्डलिनी-जागरणके जो लक्षण वे बताते थे, वे भी मुझे अपनेमें दीखे। नेत्र बंद करके मैं अद्भुत दृश्य देखता था; किंतु मेरा संतोष नहीं हुआ। मुझे भगवान् नहीं मिले—मिला एक विचित्र झमेला।'

'अधिकारीके अधिकारको जाने बिना चाहे जिस साधनमें उसे जोत दिया जाय—वह पशु तो नहीं है।' महात्माजीने कहा—'धारणा, ध्यान, समाधि—चाहे शब्द-योगसे हो या लययोगसे; किंतु जीवनमें चाञ्चल्य बना रहेगा और समाधि कुछ क्रियामात्रसे मिल जायगी, ऐसी दुराशा करनेवालोंको कहा क्या जाय। जो भगवद्दर्शन चाहता है उसे सिखाया जाता है योग···! भगवान्की कृपा है तुमपर। उन्होंने तुम्हें कहीं अटकने नहीं दिया।'

'मैं सम्मान्य धार्मिक अग्रणियोंके समीप रहा और विश्रुत आश्रमोंमें। कुछ प्रख्यात पुरुषोंने भी मुझपर कृपा करनी चाही।' अवधेशमें व्यंग नहीं, केवल खिन्नता थी—'जो अपने आश्रम-धर्मका निर्वाह नहीं कर पाते, जहाँ सोने-चाँदीका सेवन और सत्कार है, जो अनेक युक्तियाँ देकर शिष्योंका धन और शिष्याओंका धर्म अपहरण करनेका प्रयत्न करते हैं, वहाँ परमार्थ और अध्यात्म भी है, यह मेरी बुद्धिने स्वीकार नहीं किया।'

'कलियुगका प्रभाव—धर्मकी आड़में ही अधर्म पनप रहा है!' महात्माजीमें भी खिन्नता आयी—'जहाँ संग्रह है, विशाल सौध हैं, वहाँ साधुता कहाँ है। जहाँ सदाचार

नहीं, इन्द्रियतृप्ति है, वहाँ से भगवान या आत्मज्ञान बहुत दूर है। परन्तु इतनी सीधी बात लोगोंकी समझमें नहीं आती। सच तो यह है कि हमें कुछ न करना पड़े, कोई आशीर्वाद देकर सब कुछ कर दे, इस लोभसे जो चलेगा वह ठगा तो जायगा ही। आज धन और नारीका धर्म जिनके लिए प्रलोभन हैं, ऐसे वेशधारियोंका बाहुल्य इसीलिये है। ऐसे दम्भी लोग सच्चे साधु-महात्माओंका भी नाम बदनाम करते हैं।

'मैं करनेको उद्यत हूँ।' अवधेशने चरणोंपर मस्तक रक्खा--'मुझे क्या करना है, यह ठीक मार्ग आप बताने-की कृपा करें।'

'घर लौटो और माता पिताको अपनी सेवासे संतुष्ट करो।' महात्माजीने कहा—'वे चाहते हैं तो विवाह करो।' घरके सारे काम भगवान्की पूजा समझकर करो —यही तो उस वक्ताने तुमसे कहा था।

'देव!' अवधेश रो उठा।

'अच्छा, आज अभी रुको।' महात्माजी कुछ सोचने लगे।

× × ×

'ये पुष्प अञ्जलिमें लो और विश्वनाथजीको चढ़ा आओ!' प्रातः स्नान करके जब अवधेशने महात्माजी-के चरणोंमें मस्तक रक्खा, तब महात्माजीने पास रक्खी पुष्पोंकी डलिया खींच ली। टटोलकर वे अवधेशकी

अञ्जलिमें पुष्प देने लगे। बड़े-बड़े सुन्दर कमलपुष्प— थोड़े ही पुष्पोंसे अञ्जलि पूर्ण हो गयी। महात्माजीने खूब ऊपरतक भर दिये पुष्प।

असीघाटसे अञ्जलिमें पुष्प लेकर नौकासे उतरना और उसी प्रकार तीन मील दूर विश्वनाथजी आना सरल नहीं हैं। परन्तु अवधेशने इस कठिनाईकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह पुष्पोंसे भरी अञ्जलि लिये उठा।

'कोई पुष्प गिरा तो नहीं ?' महात्माजीने भरी अञ्जलिसे नौकामें पुष्प गिरनेका शब्द सुन लिया।

'एक गिर गया।' अवधेशका स्वर ऐसा था जैसे उससे कोई बड़ा अपराध हो गया हो।

'कहाँ गिरा, गंगाजीमें ?' फिर प्रश्न हुआ।

'नौकामें' अवधेश खिन्न होकर बोला- 'मैं सम्भाल नहीं सका।'

'न विश्वनाथको चढ़ सका, न गंगाजीको।' महात्माजीने कहा—'अच्छा, अपनी अञ्जलिके पुष्प मुझे दे दो !'

अवधेशने महात्माजीकी फैली अञ्जलिमें अपनी अञ्जलिके पुष्प भर दिये। महात्माजीने कहा—'बाबा विश्वनाथ !' और सब पुष्प वहीं नौकामें गिरा दिये।

'भैया, ये पुष्प विश्वनाथजीको चढ़ गये ?' पूछा महात्माजीने।

'चढ़ गये भगवन् !' अवधेशने मस्तक झुकाया।

'बच्चे! तू जहाँ है, भगवान् तेरे पास ही हैं। वहीं तू उनके श्रीचरणोंपर मस्तक रख !' महात्माजीने अबकी कुछ ऐसी बात कही जो भली प्रकार समझमें नहीं आयी।

'वहाँ किनारे एक कोढ़ी बैठता है !' साधु होते ही विचित्र हैं। पता नहीं कहाँसे कहाँकी बात ले बैठे महात्माजी।

'वह बैठा तो है।' इङ्गित की गयी दिशामें अवधेशने देखकर उत्तर दिया।

'देख, वह न नेती-धोती कर सकता, न कान बन्द कर सकता और न माला पकड़ सकता।' महात्माजी समझाने लगे—'वह पढ़ा-लिखा है नहीं, इसलिए ज्ञानकी बात क्या ज़ाने। परन्तु वह मनुष्य है। मनुष्य-जन्म मिलता है भगवत्प्राप्तिके लिए ही। भगवान्ने उसे मनुष्य बनाया, इस स्थितिमें रक्खा। इसका अर्थ है कि वह इस स्थितिमें भी भगवान्को तो पा ही सकता है।'

'निश्चय पा सकता है।' अवधेशने दृढ़तापूर्वक कहा।

'तब तुम्हें यह क्यों सूझा कि भगवान् घरसे भागकर वनमें ही जानेपर मिलते हैं।' महात्माजीने हाथ पकड़कर अवधेशको पास बैठाया—'क्यों समझते हो कि गृहस्थ होकर तुम भगवान्से दूर हो जाओगे। जो सब कहीं है, उससे दूर कोई हो कैसे सकता है।'

'मैं आज्ञा-पालन करूँगा।' अवधेशने मस्तक रक्खा संतके चरणोंपर। उसका स्वर कह रहा था कि वह कुछ और सुनना चाहता है—कोई साधन।

'भगवान् साधनसे नहीं मिलते।' महात्माजी बोले—'साधन करके थक जानेपर मिलते है। जो जहाँ थककर पुकारता है—'प्रभो ! अब मैं हार गया, वहीं उसे मिल जाते हैं। या फिर मिलते उसे हैं जो अपनेको सर्वथा

उनका बनाकर उन्हें अपना मान लेता है।'

'अपना मान लेता है ?' अवधेशने पूछा।

'संसारके सारे सम्बन्ध मान लेनेके ही तो हैं।' महात्माजी ने कहा—'कोई लड़की सगाई होते ही तुम्हें पति मान लेगी और तुम उसके पति हो जाओगे। भगवान् तो हैं सदासे अपने। उन्हें अपना नहीं जानते, यह भ्रम है। वे तुम्हारे अपने ही तो हैं।'

'वे मेरे हैं—मेरे भगवान् !' पता नहीं क्या हुआ अवधेशको। वह वहीं नौकामें बैठ गया—बैठा रहा पूरे दिन। लोग कहते हैं—कहते तो महात्माजी भी हैं कि अवधेशको एक क्षणमें भगवत्प्राप्ति हो गयी थी।

सबमें भगवान्

'हम कहाँ जा रहे हैं ?' सभीके मनमें यही प्रश्न था। सभीके मुख सूख गये थे। वे दुर्दान्त, निसर्गतः क्रूर दस्यु, जिन्होंने कभी किसीकी करुण प्रार्थना एवं आर्त चीत्कार-पर दया नहीं दिखायी, आज इस समय बार-बार पुकार रहे थे—'या खुदा! या अल्ला!'

दस्युपोत था वह। उन्होंने रात्रिके अन्धकारमें सौराष्ट्रके एक छोटे ग्रामपर आक्रमण किया। बड़ी निराशा हुई उन्हें। पता नहीं कैसे उनके आक्रमणका अनुमान ग्रामवासियोंने कर लिया था। पूरा ग्राम जन-शून्य था। भवनोंके द्वार खुले पड़े थे। न सामग्री हाथ लगी, न पशु और न मनुष्य ही। अपनी असफलताके कारण दस्यु चिढ़ उठे। बार-बार वे हाथ-पैर पटकते और दाँतोंसे होंठ काटते थे—'ये काफिर' व्यर्थ था उनका रोष।

'कोई बड़ा 'मगर' आ रहा है!' एक दस्यु, जो पोत-पर निरीक्षणके लिए था, दौड़ा आया। 'मगर' यह उनका सांकेतिक शब्द था। इसका अर्थ था कि उनके पोतको नष्ट करनेमें समर्थ कोई युद्धपोत आ रहा है।

मगर!' दस्युओंमें भय फैला। बड़ी-बड़ी काली दाढ़ी, भयंकर नेत्र, वे यमदूत-से दस्यु—किंतु जो जितना क्रूर

है, उतना ही भीरु होता है। समाचार इतना ही था— 'दूर लहरोंमें एक बड़ी रोशनी इधर आती लगती है।' परंतु दस्यु भाग रहे थे।

'फूँक दो ये मकान !' एकने मशाल उठायी।

'बेवकूफी मत कर।' सरदारने डाँटा—'इनकी रोशनी समंदरमें दूरतक हम लोगोंको रौशन करती रहेगी और जानता नहीं क्या कि सोरठी मगर कितने खूँखार होते हैं।'

'रणछोड़रायकी जय !' दस्यु जब भागे जा रहे थे, ग्रामके बाहर एक झोंपड़ीमें-से उन्हें यह ध्वनि सुनायी पड़ी। रात्रिके अन्धकारमें यह झोंपड़ी उन्हें दीखी नहीं थी।

'एक कंकड़ा ही सही।' दो-चार एक साथ घुस पड़े झोंपड़ीमें। केवल एक अधेड़ साधु मिले उनको। साधुकी झोंपड़ीमें तूँबा-कौपीन छोड़कर और होना ही क्या था। दस्युओंने ठोकर मारकर जलका घड़ा लुढ़का दिया। पटककर तूँबा फोड़ दिया और साधुको घसीट ले चले।

अपने पोतमें दस्युओंने साधुको पटक दिया था। क्रोधके आवेगमें और सच कहा जाय तो युद्धपोतके आ धमकनेके भयके कारण वे सोच नहीं सके थे कि इस साधुको वे क्यों लिये जा रहे हैं और उसका क्या करेंगे। वे सब-के-सब डाँड़ सम्हालकर बैठ गये थे। उन्हें यथाशीघ्र युद्धपोतके आनेसे पूर्व दूर निकल जाना था।

जल-दस्यु समुद्रमें मार्ग नहीं भूला करते। परंतु 'आसमानी आफत' का कोई रास्ता उनके पास नहीं था।

वे तटसे दूर समुद्रमें पहुँचे और तूफानकी भयंकर हरहराहट उनके कानोंमें पड़ी।

'तूफान!' दस्यु इस आफतकी कल्पना भी नहीं कर सके थे। समुद्रमें तूफान आता तो है; किंतु ऐसे आ पड़ेगा? क्षणोंमें दस्युपोत नियन्त्रणसे बाहर हो गया। पल-पलपर लगता था कि वह अब डूबा, तब डूबा। घोर अन्धकारमें कुछ सूझता नहीं था। लहरोंके थपेड़े— सबके वस्त्र भीग चुके थे। सबके दिल धड़क रहे थे। पोत पता नहीं किधर लहरोंपर उड़ा जा रहा था।

'हम कहाँ हैं?' मुखपर आकर भी यह प्रश्न बाहर नहीं आता था। इससे भी बड़ा प्रश्न—'हम बचेंगे आज?' लेकिन इस अन्धकारमें कोई एक दूसरेका मुखतक देख नहीं पाता था।

× × ×

'श्रीरणछोड़रायकी जय!' अरुणोदयके झुटपुटेमें दस्युओंने देखा कि वे जिसे पकड़ लाये हैं, वह भारतीय साधु हिलते-कूदते पोतमें एक तख्तेपर तलीमें शान्त बैठा था। वह इतना स्थिर, इतना शान्त था कि पोतमें वह है, यह बात ही दस्यु भूल चुके थे। अब वह हिला है और उठकर लहरोंसे एक चुल्लू पानी लेनेकी फिराकमें है।

'काफिर!' एक दस्युने अपना भाला उठाया।

'ठहरो!' सरदारने रोका उसे। हम उसे फिर जिबह

कर सकते हैं। क्या करता है यह देखने दो !'

'श्रीरणछोड़रायकी जय!' साधुको इसकी कोई चिन्ता नहीं जान पड़ती थी कि वह यमदूतोंके मध्यमें है। पोत अब भी बुरी तरह उछल रहा है, इसकी भी उसे चिन्ता नहीं थी। उसके मुखपर न भयके चिह्न थे और न खेदके। उसने एक हाथसे पोतका एक किनारा पकड़ लिया था, दूसरे हाथसे उत्ताल तरङ्गोंसे एक-एक चुल्लू जल लेकर मुख धो रहा था।

'यह इतना थोड़ा पानी क्यों पीता है?' साधुको समुद्रके जलसे आचमन करते देख दस्युओंको कुतूहल हुआ।

'समंदरका पानी वह ढेर-सा पी कैसे सकता है।' दूसरेने समाधान कर लिया अपनी समझके अनुसार।

साधुने संध्या की और सागरकी लहरोंसे उठते भगवान् भास्करको अर्घ्य अर्पित किया। पोतमें खड़े होना सम्भव नहीं था। बैठकर वे प्रार्थना करने लगे—'विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव······।'

'यह तो इबादत कर रहा है—खुदाकी इबादत !' सरदारने साथियोंकी ओर देखा।

'काफिर !' दूसरा दस्यु चिढ़ उठा—'आफ़ताब है इसका खुदा !' और भाला उठाया उसने।

'तुम मेरे सामने हथियार उठानेकी जुर्रत करते हो ?' सरदार चिढ़ उठा। उसके नेत्र जलने लगे। अपनी भारी तलवार उसने खींची—'रातको कहाँ था आफ़ताब? वह पूरी रात परस्तिश करता रहा है और कौन जानता है

कि खुदाने उसीकी दुआ कुबूल करके हमें बचाया नहीं है।'

'एक काफिरके हकमें शमशेर उठाना अच्छा नहीं है।' दूसरे दस्यु भी झगड़ेको उद्यत हो गये। 'हम इसे गवारा नहीं कर सकते। भले हमारे सरदारकी ही यह हरकत हो।'

'मैं नहीं चाहता कि वह कतल किया जाय।' सरदारने स्वरको नरम करके कहा—'कुल घंटे भरमें हम मौतके जजीरेके पास पहुँच रहे हैं। वहाँ इसे उतार देंगे।'

'एक ही बात, काफिरको मारना है। हम रहमदिलीसे मारते, जजीरेके जंगली पत्थरोंसे मारेंगे।' सरदारके साथी दस्यु खुश हो गये। 'कोई बात नहीं, इसके कबाबपर एक दिन उन्हें दावत उड़ा लेने दिया जाय।'

×   ×   ×

महाद्वीप अफ्रीकाके समीपका वह घने वनोंसे आच्छादित द्वीप। जलदस्युओंने ही नहीं, सभी परिचित माझियोंने उसका नाम 'मृत्युद्वीप' रख छोड़ा था। जलपोत उसके तटसे दूर ही रहनेका प्रयत्न करते थे। उसपर रहनेवाले वन्यमानव इतने भयानक थे कि उनका दर्शन न होना ही ठीक। चुटकी बजाते वे बिलमें-से चींटियोंके समान वनमेंसे ढेर-के-ढेर निकल पड़ते हैं। अपनी वृक्ष नौकाएँ वे पाँच-सात हाथोंपर उठाये दौड़े आते हैं और समुद्रमें एक बार उनकी नौका छूट गयी—तटके मील

भरका क्षेत्र तो उनके लिये भूमिपर दौड़ते-जैसा क्षेत्र है। उनके अचूक निशाने—उनके हाथके फेंके भाले लक्ष्य चूकना जानते ही नहीं। आरब्य सुपुष्टकाय, दैत्याकार दस्यु भी इन कौपीनधारी, कज्जलवर्ण, मोटे होंठ और रूखे घुँघराले केशोंवाले वन्यमानवोंसे दूर ही रहनेमें कुशल मानते हैं।

दस्युपोत महाद्वीपके पास नहीं गया। उपद्वीपसे भी दूर घूमता रहा। वह जैसे कुछ प्रतीक्षा कर रहा था। सहसा उस उपद्वीपकी हरियालीमें हलचल हुई। कुछ आकृतियाँ रेंगती दिखायी पड़ीं और फिर तो चिचियारी-का कोलाहल समुद्रकी लहरोंपर गूँजने लगा।

'जल्दी फेंक दो इसे। वे आ रहे हैं। पास आ गये तो समझो कयामत आ गयी।' दस्यु-सरदारने लहरोंके ऊपर दूर तैरती काली-काली नौकाएँ देख ली थीं। जैसे बड़े-बड़े मगर मुख फाड़े बढ़े आ रहे हों।

'मेहरबान! अब इन लोगोंका मेहमान बनना है जनाबको।' दो दस्युओंने पकड़कर उठाया साधुको और अट्टहास करके फेंक दिया समुद्रमें।

'या खुदा!' सरदारने सिरपर हाथ दे मारा। कई नौकाएँ एक बड़ी लहरके पीछेसे ऊपर उठ आयीं एक साथ। अब उनपर खड़े चीत्कार करते वन्यमानव स्पष्ट देखे जा रहे थे। चिल्लाया सरदार—'फुर्ती! डाँड़ उठाओ! मौत दौड़ी आ रही है! मौत!'

एक, दो, चार—पचीसों नौकाएँ बढ़ी आ रही थीं। पोत इन नौकाओंके समान शीघ्रगामी कैसे हो सकता है

और समुद्र अभी शान्त हुआ नहीं है। दस्यु प्राणपर खेलकर डाँड़ चला रहे थे।

'ओह !' सबसे आगेकी नौकापर खड़े एक काले पुरुषने हाथ उठाया। एक भाला 'खप्' करता आकर एक दस्युके कन्धेमें घुस गया। लुढ़क गया दस्यु।

'खप्, खट्, खट्, बराबर भाले दस्युओंपर या पोत-पर पड़ने लगे थे। नौकाओंने उन्हें घेर लिया था।

दस्यु-सरदारने देखा कि अब भागनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। वह पोतसे कूद पड़ा सागरके जलमें। इतने वन्यमानवोंसे युद्धकी तो बात सोचना व्यर्थ है।

×   ×   ×

'आप यहाँ कैसे पहुँचे ?' सरदारने आँखें खोलीं तो देखा कि साधु उसके ऊपर झुके कुछ पूछ रहे थे। परन्तु अभी वह कुछ बोल सके, ऐसी दशामें नहीं था। मस्तकमें भयंकर पीड़ा हो रही थी। तनिक सिर घुमाकर वह उलटी करने लगा। पेटमें-से समुद्रका पानी निकल जाने-पर उसे कुछ शान्ति मिली।

'बहुत थोड़ी चोट लगी है। सिर चट्टानसे टकरा गया लगता है; परन्तु रक्त अब बंद हो गया है।' साधु पास बैठे दस्युपतिका सिर सहला रहे थे।

'हुजूरकी मेहरबानी !' दस्यु अत्यन्त दीनस्वरमें बोला। उसके नेत्रोंसे आँसू बह चले—'मुझे हुजूर माफ

कर दें। खुदाके बंदे हैं हुजूर !'

'आप घबराइये मत ! मुझे भी लहरोंने आपके ही समान यहाँ किनारे फेंक दिया। अन्तर इतना है कि मुझे चोट नहीं लगी और मैंने समुद्रका पानी नहीं पिया ! भगवान् सबका मङ्गल करते हैं।' साधु स्नेहपूर्वक हाथ फेरते रहे—'धूप तीव्र है आप खिसक सकें तो हमलोग कुछ दूर चलकर छायामें बैठें !'

'हम मौतके जजीरेपर हैं ?' दस्यु-सरदार उठ बैठा। उसका पुष्ट शरीर—उसकी जीवनी शक्ति इस विपत्तिमें इतनी क्षीण नहीं हुई थी कि वह उठ न सके; किन्तु इधर-उधर देखकर वह हतप्रभ हो उठा। 'वह दूरसे आवाज आ रही है। वे लोग मेरे साथियोंको बाँधकर उनके चारों ओर नाचते-कूदते, चिल्लाते होंगे। वे उन्हें पत्थरों-से मारकर समाप्त कर डालेंगे और टुकड़े करके उनका कबाब खा जायँगे।'

'मृत्यु दो बार नहीं आती और जब आनेको होती है, उससे पहले भी नहीं आती।' साधुका तत्त्वज्ञान दस्युकी समझमें आये, इसकी आशा नहीं थी; साधुने भी इसे झट अनुभव कर लिया। वे प्रसङ्ग बदलकर बोले—'मेरे गुरुदेवने बताया है कि 'जो सम्मुख आये, उसे भगवद्रूप मानो और उसके अनुरूप उसकी सेवा करो। संसारकी चिन्तामें पड़ना तुम्हारा काम नहीं है।' आप क्या छाया-तक चल सकेंगे ?'

'आपका हुक्म मानूँगा।' दस्युको सहायताकी

आवश्यकता नहीं पड़ी। वह भी देख रहा था कि अब समुद्रमें भागनेका कोई मार्ग नहीं और धूपमें देरतक बैठा नहीं जा सकता। दोनोंमें ही दूरतक जानेकी शक्ति नहीं थी। तटके सबसे समीपके वृक्षतक वे जा सके और बैठ गये। लहरोंके थपेड़ोंने उनके अंग-अंग चूर कर दिये थे।

'आइये, भगवन्!' विपत्ति अकेली नहीं आती। छायामें बैठे आधा घंटे भी नहीं हुआ था कि सामनेकी झाड़ीमें दो नेत्र चमक उठे। साधुसे पहले दस्युकी दृष्टि उधर गयी। वह भयसे पीला पड़ गया। उसने बिना बोले उधर संकेत किया। परन्तु साधु तो अद्भुत पुरुष है। उसने तो ऐसे बुलाया जैसे किसी सामान्य अतिथिको बुला रहा हो— 'आप संकोचपूर्वक छिप क्यों रहे हैं? पधारिये!'

सचमुच झाड़ीमें-से सिंह निकला और अपनी स्थिर मन्दगतिसे आगे बढ़ आया।

'आप विराजें! कोई आसन मेरे पास नहीं है।' साधुने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़े 'हम कंगाल कोई भी अभ्यर्थना करने योग्य नहीं, देव!'

सिंह बैठ गया और जब उसके पास साधु बैठ गये, तब अपना मुख उसने उनके पैरोंपर रख दिया। एक पालतू कुत्तेके समान अपनी पूँछ वह हिला रहा था और उसके नेत्र अधमुँदे हो चुके थे।

'हुजूर करिश्मा कर सकते हैं!' दस्युको आश्चर्य हो रहा था कि एक आदमी इस तरह जंगलमें खूँखार शेरका सिर थपथपा सकता है।

'भगवान्ने कहा है कि वे पशुओंमें सिंह हैं।' साधुका स्वर श्रद्धापूर्ण था।

'हुजूर आफताबकी इबादत करते थे और अब शेरको खुदा कह रहे हैं!' दस्युकी समझमें कुछ नहीं आया था; परन्तु उसका भय दूर हो गया था।

'तो आप समझते हैं कि खुदा हर जगह और हर वस्तुमें नहीं है?' साधुने देखा दस्युकी ओर।

'वे आ गये—उनमें भी खुदा...।' दस्युका स्वर भयसे बंद हो गया। झाड़ियोंके पीछे कुछ काली आकृतियाँ उसने देख ली थीं, जो इधर-उधर हिल रही थीं।

पता नहीं क्या हुआ—एक चिचियारी गूँजी और शान्ति फैल गयी। कुछ क्षण ऐसा लगा कि वन्य-मानवों-का समूह घने वनमें, लताओंके पीछे चुपचाप एकत्र हो रहा है और तब तीन-चार सुपुष्ट व्यक्ति धीरे-धीरे एक ओरसे बाहर आये।

'आइये, भगवन्!' साधुने उनकी ओर देखा और सिंहने भी सिर उठाकर देखा; किन्तु वे भागें, इससे पूर्व ही सिंहने मुख साधुके पैरोंपर फिर रख लिया।

कुछ पुकारकर कहा उन लोगोंने—एक साथ पूरी भीड़ वनके पीछेसे निकल आयी। वन्य-मानव भूमिपर लेटकर साधुको प्रणाम करते थे।

'ये कहते हैं कि आप वनके देवता हैं या उनके दूत?' दस्युने अधर हिलाकर बिना शब्द किये एक वृद्धसे संकेत-की भाषामें बातें प्रारम्भ कर दीं।

'देवताओंका आराधक !' साधुका उत्तर सुनकर वे वन्यमानव नृत्य करने लगे। सिंहकी उपस्थिति वे भूल ही गये। उन्होंने साधुसे प्रार्थना की कि वे उनके ग्रामको पधारकर पवित्र करें। वहीं निश्चय हो गया कि दस्युपोत वे साधुको दे देंगे भारत जानेके लिए और दस्युको तो वे साधुका सेवक ही समझ रहे थे। सचमुच अब दस्यु साधु सेवक हो चुका था।

'सुहृदं सर्वभूतानाम्'

'सावधान !' हवाई जहाजके लाउडस्पीकरसे आदेश-का स्वर आया। यह अन्तिम सूचना थी। वह पहिलेसे ही द्वारके सम्मुख खड़ा था और द्वार खोला जा चुका था। उसकी पीठपर हवाई छतरी बँधी थी। रात्रिके प्रगाढ़ अन्धकारमें नीचे कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। केवल आकाशमें दो-चार तारे कभी-कभी चमक जाते थे। मेघ हल्के थे। वर्षाकी कोई सम्भावना नहीं थी। बादलोंके होनेसे जो अन्धकार बढ़ा था, उसने आश्वासन ही दिया कि शत्रु छतरीसे कूदनेवालेको देख नहीं सकेगा। हवाई जहाज बहुत ऊपर चक्कर लगा रहा था। सहसा वह नीचे चीलकी भाँति उतरा।

'एक हजार दो सौ फीट, एक सौ सत्रह, कूद जाओ !' आदेश सभी अंग्रेजीमें दिये जाते थे। यह आदेश भी अंग्रेजीमें ही था। मैंने अनुवादमात्र किया है। एक काली छाया हवाई जहाजसे तत्काल नीचे गिरी और द्वार बूँद हो गया। हवाई जहाज फिर ऊपर ऊठ गया। वह मुड़ा और पूरी गतिसे जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें लौट गया। शत्रुके प्रदेशसे यथाशीघ्र उसे निकल जाना चाहिये। जिसे नीचे गिराया गया, उसकी खोज-खबर लेना न

उसका कर्तव्य था और न ऐसा करना उस समय सम्भव ही था।

'एक, दो, तीन—दस, ग्यारह—सत्तर, इकहत्तर, गिरनेवाला पत्थरके समान ऊपरसे गिर रहा था; किंतु वह अभ्यस्त था। बिना किसी घबराहटके वह गिनता जा रहा था। उसे पता था कि उसे जब गिराया गया, उसका हवाई जहाज पृथ्वीसे एक हजार दो सौ फीट ऊपर था। 'एक सौ पंद्रह, एक सौ सोलह, एक सौ सत्रह!' संख्या जो उसे बतायी गयी थी, पूरी गिनी उसने और तब उसके हाथोंने पीठपर बँधी छतरीकी रस्सी खींच दी। पैराशूट एक झटकेसे खुल गया। अब वह वायुमें तैरता हुआ धीरे-धीरे नीचे आ रहा था।

सहसा वायुका वेग प्रबल हो गया। पैराशूट एक दिशामें उड़ चला; किंतु वह बहुत दूर नहीं जा सका। उसके सहारे उतरनेवालोंके पैरोंको किसी वृक्षकी ऊपरी टहनियोंका स्पर्श हुआ। अगले क्षणोंमें एक शाखामें पैर उलझानेमें वह सफल हो गया। बहुत कड़ा झटका लगा। मुख, हाथ, पीठ शाखाओंपर रगड़ लगी। अच्छी चोट तथा कुछ खरोंचें भी आयीं। शरीरकी नस-नस कड़कड़ा उठीं, लेकिन अन्तमें पैराशूट उलट गया। वह डालपर स्थिर बैठ गया और उसने रस्सियाँ खोलकर पैराशूटको पीठपरसे उतार लिया।

वह कहाँ है, कुछ पता नहीं उसे। चारों ओर घोर वन है। वन्यपशुओंकी चिग्घाड़ें रह-रहकर गूँज रही हैं। जो मान-चित्र उसे दिया गया था, अब वह बड़ी

कठिनाईसे काम देगा ; क्योंकि हवा उसे अपने लक्ष्यसे कितना हटा लायी है, किस स्थानपर वह आ गया है, यह जाननेका कोई उपाय उसके पास नहीं।

रात्रिके इस अन्धकारमें भूमिपर उतरना आपत्तिको आमन्त्रण देना था। प्रकाश वह थोड़ा भी कर नहीं सकता। इससे शत्रु कहीं समीप हुआ तो वह पता पा जायगा। जबतक झुटपुटा नहीं हुआ, वह चुपचाप उसी डालपर बैठा रहा। मच्छरोंने उसका मुख लाल बना दिया। शीतल वायुके झकोरे यद्यपि शरीरको अकड़ाये दे रहे थे, उसे अच्छे लगे ; क्योंकि कुछ क्षणको उनके कारण मच्छरोंसे उसे छुटकारा मिल जाता था। वायुकी दुर्गन्धि बतलाती थी कि समीप ही कहीं दलदल है।

झुटपुटेके प्रारम्भमें ही वह नीचे उतरा। सबसे पहले उसने कमरसे बड़ा चाकू निकालकर भूमिमें गड्डा बनाया। गीली मिट्टी होनेसे थोड़े ही परिश्रममें गड्ढा इतना बन गया कि उसमें पैराशूट रखकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी उसने। मिट्टीके ऊपर सूखे पत्ते इधर-उधरसे लाकर बिखेर दिये। अब वह निश्चिन्त हुआ कि पैराशूट या ताजे गड्ढेको देखकर शत्रुको कोई संदेह होनेका भय नहीं रहा।

× × ×

'हम उसे गोली नहीं मार सकते। वह भारतीय है। उसे नेताजीको दे देना होगा।' जापानी अधिकारी परस्पर विवाद करनेमें लगे थे। एक अंग्रेजोंके जासूसको

मार देना चाहिये, इस विषयमें दो मत नहीं था उनमें ; किंतु नेताजीने बहुत कठोर रुख बना लिया था, भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारको लेकर। बात लगभग झगड़ेकी सीमातक पहुँच चुकी थी। नेताजी अड़े थे—'प्रत्येक भारतीय बन्दी उन्हें दे दिया जाय। उसके साथ क्या हो, यह निर्णय वे करेंगे।'

'यह हमारे सैनिक अधिकारोंमें हस्तक्षेप है।' जापानी अधिकारियोंको ऐसा प्रतीत होता था और वे मनमें चिढ़ते थे ; किंतु प्रत्यक्ष विरोध करना उनके लिए सम्भव नहीं या। उन्हें टोकियोसे आदेश मिला था—'सुभाषचन्द्रवसुका सम्मान सम्राट्के प्रतिनिधिकी भाँति किया जाना चाहिये।'

कल रात्रिमें कोई अंग्रेजी सेनाका विमान वनमें जासूस उतार गया। यह पता नहीं है कि जासूस अकेला ही आया है या उसके कुछ और साथी हैं। विमानका पीछा नहीं किया जा सका ; किंतु वनमें खोज करनेवाले सैनिक एक भारतीयको पकड़कर ले आये। वह पैराशूट मिल गया भूमिमें गड़ा हुआ, जिससे वह उतरा था। अब बिना कठोर व्यवहारके जासूस कुछ बतायेगा नहीं। कुछ सैनिक अधिकारी उसे गोली मार देनेके पक्षमें हैं ; किंतु नेताजीका संदेश आ गया है। उन्होंने कहलाया है —'उससे पूछनेका काम मुझपर छोड़ दो !'

'हम यदि उसे रोकते है, बात टोकियोतक पहुँच सकती है।' प्रधान सैनिक अधिकारीने गम्भीर चेतावनी दी और तब दूसरा उपाय ही इसे छोड़कर नहीं रह गया

कि उस भारतीयको चुपचाप नेताजीके समीप भेज दिया जाय।

× × ×

'जिस वृक्षपर मैं उतरा था, उसकी टहनियाँ और पत्ते टूटे थे। उनको हटा देना चाहिये, इधर मेरा ध्यान नहीं गया था।' वह तरुण बता रहा था—'जापानी वन-निरीक्षकोंका ध्यान उन रातके टूटे पत्तोंपर गया। उन्होंने उस वृक्षके आसपास खोजकी और पैराशूटको भूमिमें-से खोद निकाला। इसके बाद उनके सैनिकोंका एक पूरा समूह बनमें फैल गया। मेरे लिए छिपना सम्भव नहीं रह गया और पिस्तौलका उपयोग करनेसे कोई लाभ नहीं था। विवश होकर मैं उनके सामने आ गया।'

'जीवनमें शिक्षाकालसे तबतक मैंने कभी ईश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं की थी। वैसे मैं पहिले संयम पसन्द करता था; किन्तु जासूसीमें अनेक वार शराबियों-जुआरियोंके बीचमें रहना पड़ा। धीरे-धीरे मुझमें सब दुर्व्यसन आ गये। नास्तिक था ही, परलोककी चिन्ता पागलपन लगती थी।' युवक कहते-कहते रो पड़ा था। उसने अपने अनेक अपकर्मोंकी रोते-रोते चर्चा की। यहाँ उनकी चर्चा अनावश्यक ही नहीं, अनुचित भी है।

'मुझे एक गन्दे कमरेमें हथकड़ी डालकर बन्द कर दिया गया था। मच्छरोंको भगानेके लिए हाथ भी खुले नहीं थे। परन्तु विपत्ति इतनी ही कहाँ थी। चूहोंका

एक झुंड आया। उसने मुझे पहिले दूरसे देखा, सूँघा और फिर वे निकट आ गये। जब उनमें-से एकने मेरी गर्दनपर मुँह लगाया; मैं चीख पड़ा—'हे भगवान्!' लेकिन मुझे अपनेपर ही क्रोध आया। 'मेरे-जैसे पामर नास्तिककी पुकार भगवान् सुनेगा भी—यदि वह हो!' वह अब हिचकियाँ लेने लगा था।

'किंतु भगवान् है। उसने मेरे-जैसे पापीकी पुकार भी सुनी। घंटेभर भी वह देर करता तो जापानी सैनिक मारते या छोड़ते, चूहे मुझे नोंच-नोंचकर खा लेते। उन्होंने गर्दन, पैर और कंधेपर केवल तीन घाव किये कि मेरी कोठरीका द्वार खुल गया। मुझे वह जापानी सैनिक भगवान्का दूत ही लगा। वह मुझे गोली भी मार देता तो मैं उसे ऐसा ही मानता; किंतु वह मुझे मोटरमें बैठाकर नेताजीके समीप ले गया।' उसने अपने अश्रु पोंछ लिये और दो क्षणको चुप हो गया।

'मुझे आज पता लगा कि भगवान् है और वह मुझ-जैसेकी पुकार भी सुनता है। उसने मुझे बचाया है। अब यह जीवन उसका, उसीके स्मरणमें अब जीना या मरना है।' वह बता रहा था कि उसने नेताजीसे ये बातें कही थीं—'अब शस्त्र उठाकर किसी ओरसे किसीकी भी हत्या करनेकी इच्छा मेरी नहीं है। भगवान् है, तो पूरी पृथ्वी उसकी है। सब मनुष्य उसके अपने हैं। अतः मैं युद्धमें अब किसी ओरसे नहीं लड़ूँगा।'

'आपपर प्रभुकी कृपा है। आप सच्चे अर्थोंमें भगवद्-भक्त हैं। भले यह भक्ति आपको इसी क्षण मिली हो।'

नेताजीका स्वर भी भर आया था—' हम आपपर कोई प्रतिबन्ध लगानेकी धृष्टता नहीं कर सकते। आप चाहे जहाँ जानेको स्वतन्त्र हैं। हम केवल प्रार्थना करेंगे कि आप मेरा आतिथ्य स्वीकार कर लें आजके दिन।'

' मुझसे कुछ पूछा नहीं गया। मैंने स्वयं जो कुछ बता दिया, वही नोट कर लिया गया। मेरी हथकड़ियाँ तो नेताजीने पहुँचते ही खुलवा दी थीं। उन्होंने जिस श्रद्धासे मुझे भोजन कराया, उसका स्मरण करता हूँ तो मुझे अपने-आपसे घृणा होने लगती है। उन लोक-पूज्यकी श्रद्धा मिली मुझे केवल इसलिए कि मैंने भगवान्‌को स्वीकार किया था। मैंने किया ही क्या था, मेरा मृत्युमुखसे उद्धार तो स्वयं उस भगवान्‌ने किया था जो कदाचित् मेरे-जैसोंके पाप देखना जानता ही नहीं! भगवान्! भगवान्!' और वह फूटकर रो पड़ा। उन्मत्तके समान उठा और एक ओर दौड़ता चला गया। पता नहीं कहाँ गया वह।

' पागल है!' एक सज्जनने कहा। फटे वस्त्र, बढ़े केश, चिड़ियाका घोंसला बनी दाढ़ी। उसका वेश देखकर दूसरा अनुमान लगाया भी कैसे जा सकता है।

' वह मौजमें आता है तब कहता है—मित्र भगवान्! मेरे प्यारे मित्र! आप सबके मित्र!' उन वृद्ध महोदयने बताया जिनसे अभी वह बातें कर रहा था—' वह रंगूनसे युद्धकालमें ही वनके मार्गसे पैदल भारत आया। वह कहता है कि बनके भयानक जन्तु और उनसे भयानक नरभक्षी मानव भी उसके लिए मित्र ही थे। भगवान

सबका मित्र और उस भगवान्ने उसे मित्र जो बना लिया। अब वह अपनी धुनमें पागल है।'

'सबका सुहृद् वह श्यामसुन्दर! उसे अपने सुहृद्-रूपमें पानेवाले ये महाभाग धन्य हैं!' पास सुनते एक साधुने कहा।

श्रद्धाकी जय

आजकी बात नहीं है ; किंतु है इसी युगकी बात। क्या हो गया कि इस बातको कुछ शताब्दियाँ बीत गयीं। कुलान्तक्षेत्र (कुलू प्रदेश) वही है, व्यास और पार्वती-की कल-कल-निदनादिनी धाराएँ वही हैं और मणिकर्णका अर्धनारीश्वर क्षेत्र तो कहीं आता-जाता नहीं है।

कुलूके नरेशका शरीर युवावस्थामें ही गलित कुष्ठसे विकृत हो गया था। पर्वतीय एवं दूरस्थ प्रदेशोंके चिकित्सक व्याधिसे पराजित होकर विफल-मनोरथ लौट चुके थे। क्वाथ-स्नान, चूर्ण-भस्म, रस-रसायन कुछ भी तो कर सका होता।

नरेश न उच्छृङ्खल थे, न भोगपरायण। उनके पूर्व पुरुषोंने कुलान्तक्षेत्रके दिव्य त्रिकोण (व्यास नदीके उद्गम, पार्वती नदीके उद्गम और दोनोंके संगम स्थलकी मध्यभूमि) को भगवान् उमा-महेश्वरकी विहार-भूमि मानकर उसे अपने निवाससे अपवित्र करना उचित नहीं समझा। मनुष्य रहेगा तो उसके साथ उसके प्रमाद; त्रुटियाँ भी रहेंगी ही। अत: उन्होंने व्यासके दक्षिणतट-पर अपनी राजधानी बनायी, जो आज कुलू कही जाती है। यों इस त्रिकोणमें उनके वंशधरोंने पीछे एक निवास

बना लिया था नगरमें और वही आज पुरानी राजधानी-के नामसे जाना जाता है।

इतने भावप्रवण कुलमें जिनका जन्म हुआ, उनके रक्तमें वासनाकी वृद्धिके लिए आहार कहाँसे मिलता। नरेश बचपनसे अत्यन्त श्रद्धालु थे और श्रीरघुनाथजीके उपासक थे। शरीरमें रोगके लक्षण प्रकट होते ही चिकित्साके साथ पण्डितोंके अनुष्ठान प्रारम्भ हो गये थे।

प्रारब्ध प्रबल होता है, तब पुरुषार्थ सहज सफल नहीं होता। वर्षाकी उमड़ती नदीमें बाँध बनानेके प्रयत्न सफल हों, असीम शक्ति और साधनकी अपेक्षा है। ग्रह-शान्ति देवाराधन और चिकित्साके प्रयत्न प्रारब्धको रोक नहीं सके थे। नरेशके सर्वाङ्गमें कुष्ठ फूट पड़ा था।

'यह घृणित रोग'—नरेशको देहका मोह नहीं रहा था किंतु उन्हें आन्तरिक व्यथा थी कि अब न वे सत्पुरुषों—संतोंके चरणोंपर मस्तक रखने योग्य रहे और न कथा-सत्संगमें बैठने योग्य। किसी तीर्थमें, पुण्यक्षेत्रमें कैसे जाया जा सकता है? अपने रोगका संस्पर्श दूसरोंको प्राप्त हो, बड़ी सावधानीसे नरेश इसे बचाते थे। पत्नीतकको उन्होंने पद-वन्दनासे वञ्चित कर दिया था। उस साध्वीको भी अपने आराध्यकी आज्ञा स्वीकार करके दूरसे ही दर्शन करना पड़ता था।

'यह संस्पर्शसे फैलनेवाला संक्रामक रोग है। किसी भी पावन तीर्थमें यह भाग्यहीन अब स्नानके योग्य नहीं रहा।' महाराज अत्यन्त दुःखित रहने लगे थे। 'किसी मन्दिरमें प्रवेशका अधिकार नहीं रहा मुझे। पतितपावन

प्रभु भी रूठ गये मुझसे ।'

अन्तमें राजपुरोहितने नरेशको मणिकर्णमें निवासकी सम्मति दी। मणिकर्ण-क्षेत्रका उष्णोदक सम्भव है, नरेशके रोगको दूर कर सके; राजपुरोपितकी यह आशा सर्वथा निराधार नहीं थी। उष्ण जलस्रोत पृथ्वीपर बहुत हैं—भारतमें भी बहुत हैं; किंतु प्राय: सर्वत्र उनमें एक गन्ध है और वे स्वादमें कषाय न भी हों, परन्तु स्वादिष्ट नहीं है। मणिकर्णके क्षेत्रमें खौलते जलस्रोतका विस्तार मीलोंमें है। लगभग पूरा मणिकर्ण ग्राम घर-घरमें इस जलको अपने कुण्डोंमें रोककर उससे भोजन सिद्ध कर लेता है। जल निर्गन्ध है, स्वादिष्ट है और अब भी अनेक रोग—चर्मरोग विशेषत: उससे दूर होते हैं।

नरेशने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उनकी दृष्टि दूसरी थी। शरीर जाता ही हो तो उमा-महेश्वरकी गोदमें ही जाय! भगवती हिमवान्-सुताका साक्षात भौतिक रूप है—पार्वती नदी और उनकी धाराको अंकमाल देते चलनेवाला खौलता उष्णोदक स्रोत साक्षात् शिवका ही तो रूप है। मणिकर्ण, क्षेत्रका प्राकट्य तो शम्भु-उमाकी क्रीड़ामें हुआ है। वहाँ कहीं भी स्नान किया जा सकेगा, मुख्य स्थलसे कुछ नीचे हटकर। जन-सम्पर्कका प्रश्न ही वहाँ नहीं उठता।

राज्यका भार वैसे भी अब मन्त्रियोंपर था। आजके समान भुन्तरके समीप व्यासपर सेतु नहीं था। रस्सियोंको बाँधकर किसी प्रकार पर्वतीय जन व्यासको पार करते थे। नरेशके लिये कुछ अच्छा सेतु बना। व्यास-

पार्वतीके सगममें स्नान करके वहाँसे दस कोस ऊपर मणिकर्ण-क्षेत्रमें नरेशका शिविर पड़ा। गिने-चुने सेवक थे साथमें और तब मणिकर्ण गाँवका कोई अस्तित्व नहीं था। केवल पर्वके समय वहाँ कुछ लोग आ जाते थे।

'इस क्षेत्रमें पाण्डु-पुत्रोंने निवास किया था। इसके मूर्धन्य भागमें ही धनञ्यने तप करके चन्द्रमौलिकी आराधना की और अपने पराक्रमसे उन पिनाकपाणिको संतुष्ट किया। भगवान् गंगाधर अर्जुनपर कृपा करनेके लिये यहाँ किरात-वेशमें विचरण कर चुके हैं। भगवती जगदम्बा पार्वतीके शवरकन्यारूपमें श्रीचरण यहाँ पड़े हैं।' नरेश इस क्षेत्रमें आकर अपने रोगको—अपनी व्यथाको विस्मृत हो गये। वे दूरसे चमकते धवल वर्ण इलावर्त शिखरको प्रणिपात करते, उष्णोदकमें स्नान करते और प्राय: भाव-विह्वल रहते।

'श्रीराम जय राम जय जय राम।'

जिह्वापर यह नाम तो उनके बचपनसे बसा था। अब इस क्षेत्रमें आकर उन्होंने अन्न और दूध भी त्याग दिया था। उनका राज्य स्वादिष्ट फलोंका आकर है; किंतु उनके लिए वे फल भी अब अग्राह्य बन गये थे। वनमें मिलनेवाला चावल (कहा जाता है कि यह पाण्डवोंकी तीर्थयात्राके समय उनकी की हुई कृषिका अवशेष है)' जंगली गोभी और कुछ ऐसे ही शाक—इनको मणिकर्णके उष्णोदकमें उबाल लिया जाता और दिनमें एक बार नरेश उसे ग्रहण करते। अब तो यह चावल-गोभी मणिकर्णसे चौदह मील ऊपर क्षीर-गंगाक्षेत्र-

के वनमें ही उपलब्ध हैं।

आस-पासके क्षेत्रोंमें भी नरेश हो आते थे। तप, जप और भावना—उनके देहकी बाह्यावस्था कुछ भी हो, उनका हृदय इलावर्त शिखरपर जमे हिमके समान उज्ज्वल हो गया था, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

सहसा एक दिन राजधानीमें संदेश आया कि नरेश लौट रहे हैं। राजसदन सजाया गया। प्रजा प्रसन्न ही हुई। उनके प्रजावत्सल नरेश रोगी सही, उनके मध्यमें तो रहें।

'गगनचुम्बी हिमगौराकृति पर्वतशिखर उन ज्योतिर्मयके घुटनोंतक भी नहीं था। कह नहीं सकता कि द्वितीयाका चन्द्र उनके भालपर था या क्षितिजपर; किंतु पिंगल जटाजूटका अन्त दृष्टि नहीं पाती थी।' लौटकर नरेशने एकान्तमें राजगुरुको जो कुछ बतलाया, वह यही था—'मणिकर्णके उष्णोदकसे उठती वाष्पराशि स्पष्ट नहीं देखने देती थी और संध्याकालका अन्धकार भी प्रारम्भ हो गया था; किन्तु लगता था हिमशीतल पार्वतीकी धारासे एक पाटल गौर मूर्ति उठ खड़ी हुई है और उसे वामभागमें किये कर्पूरगौर, अमित तेजोमय अहिभूषण भवानीनाथ स्वयं सम्मुख खड़े हैं।'

गद्गद्कण्ठ, अश्रु झरते नयन नरेश कह रहे थे 'प्रभुकी मूर्ति, लगता था, क्षणमें प्रकट होती है, फिर अदृश्य

हो जाती है अथवा जलमें परिणत हो जाती है। उन्होंने मुझे आदेश दिया—'अयोध्यासे अपने श्रीरघुनाथको ले आ। उनका स्नानोदक लेकर स्नान कर—तेरा शरीर स्वस्थ हो जायगा।'

नरेशने बताया कि रात्रिमें उन्होंने स्वप्नमें अयोध्या-की वह छोटी-सी श्रीरघुनाथ-जानकीकी श्रीमूर्ति देखी है। उसका स्थान देखा है और उन मर्यादापुरुषोत्तमने भी इस पर्वतीय प्रान्तको अपने पदार्पणसे धन्य करनेका वचन दिया है।

राजपुरोहितको तो जैसे निधि प्राप्त हुई। मार्ग मिल गया तो लक्ष्य भी मिलकर ही रहेगा। स्वयं राजपुरोहित-ने अयोध्या जानेका निश्चय किया। सेवक, सचिव आदि सबको आदेश दे दिये गये।

यह समूह पैदल यात्रा करके अयोध्या पहुँचा। उसे निर्दिष्ट स्थलपर श्रीरघुनाथजीकी उस मूर्तिके दर्शन भी हो गये; किंतु त्रिभुवनके स्वामीको अपने घर ले जाने-के पूर्व उनके सत्कारकी प्रस्तुति भी तो चाहिये। राज-पुरोहित पूरे एक वर्ष अयोध्या रहे। उन्होंने प्रत्येक दिन, प्रत्येक पर्वपर जैसी, जिस विधिसे सेवा श्रीरघुनाथजीकी होती थी, उसका सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया और उस सबको लिखते गये।

एक वर्ष पश्चात् योजना बनाकर एक रात्रिमें राज-पुरोहितके नेतृत्वमें यह पर्वतीय लोगोंका समूह मन्दिरसे उस श्रीमूर्तिको लेकर चल पड़ा। प्रातःकाल जब मन्दिर-

में मूर्ति नहीं मिली, अयोध्यामें हुई हलचलका आप अनुमान कर सकते हैं।

अयोध्याके लोग पीछा करेंगे, यह बात तो निश्चित थी। उन्होंने पीछा किया; किंतु राजपुरोहित इसके लिये प्रस्तुत थे। क्रोधसे उबलते अवधवासी जब समीप आये, राजपुरोहित अपने पूरे समाजके साथ हाथ जोड़े, सिर झुकाये खड़े थे। उन्होंने कहा—'आप मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीके अपने जन हैं। हमारे परमादरणीय हैं और हम पर्वतके पापी-अपराधी प्राणी हैं। आप हमें दण्ड देंगे तो हम पवित्र ही होंगे। किंतु श्रीरघुनाथजीको हम उनके आज्ञानुसार लाये हैं। वे विश्वनाथ पर्वतोंकी यात्रा करने निकले हैं। यदि वे लौटना स्वीकार करें, तो आप उन्हें प्रसन्नतापूर्वक ले जाइये।

अयोध्याके लोग क्रुद्ध तो बहुत थे; किन्तु प्रतिवादके ईंधनके स्थानपर नम्रताका जल पड़े तो क्रोधाग्नि कबतक जलती रह सकती है। सबसे अद्भुत बात यह हुई कि वह कुछ तोलेकी श्रीरघुनाथजीकी श्रीमूर्ति किसीके उठाये उठती नहीं थी। सब प्रयत्न करके थक गये और अन्तमें अयोध्यासे आगतोंको कहना पड़ा—'जब प्रभु ही जाना चाहते हैं, तो उन्हें रोकनेवाले हम कौन होते हैं। किन्तु श्रीरघुनाथजीके आराधकोंका एक परिवार उन्हें छोड़कर लौट जानेको तैयार नहीं था। वह परिवार श्री-रघुनाथजीके साथ ही कुलू आया और अभी कुछ वर्ष पूर्वतक उस परिवारके वंशधर कुलूमें थे।

पूरे मार्गमें विधिपूर्वक श्रीरघुनाथजीकी पूजा-अर्चा होती आयी थी। केवल विश्रामके कुछ समयमें ही उनकी पालकी यात्रा करती थी। मार्गमें ही वे पर्वोत्सव भी मनाये गये जो उस समय पड़े।

कुलूमें श्रीरघुनाथजीके पहुँचनेसे पूर्व ही उनके मन्दिरका निर्माण पूरा हो गया था। धूम-धामके साथ श्रीरघुनाथजी कुलू पधारे और मन्दिरमें उन्हें विराजमान कराया गया। नरेशने मन्दिरमें प्रवेश नहीं किया ; किंतु श्रीरघुनाथजीके पधारते समय दूरसे उनकी पालकीको साष्टाङ्ग प्रणिपात कर लिया था।

उत्तम मुहूर्तमें श्रीरघुनाथजीका विधिपूर्वक महाभिषेक सम्पन्न हुआ। अभिषेकका जल स्वयं राजपुरोहित सेवकोंद्वारा लिवाकर राजाके पास आये और उल्लसित स्वरमें बोले 'आप चौकीपर विराजें। अब आपका अभिषेक सम्पन्न हो।'

'आप भी ऐसी अनुचित आज्ञा देंगे, ऐसी आशा मुझे नहीं थी।' नरेश दोनों हाथ जोड़कर दूर खड़े रोते-रोते कह रहे थे—'यह मेरे आराध्यके अभिषेकका परमपावन जल है। इसे क्या इस कुष्ठसे अपवित्र देहपर डाला जा सकता है? यह मेरा वन्दनीय है। मैं कैसे यह कर सकता हूँ कि इसका कोई कण मेरे पैरोंतक जाय?'

दो क्षण राजपुरोहित हतप्रभ खड़े रह गये। अन्तमें बोले—'भगवान् शंकर और स्वयं रघुनाथजीका ही तो

यह आदेश है। श्रीगंगाजी भगवान्का पादोदक ही हैं और उनमें स्नान करना शास्त्र-संत सभी परम सौभाग्य मानते हैं।'

'मैं अज्ञ प्राणी हूँ। तर्क करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है।' नरेशने लगभग गिड़गिड़ाते हुए कहा—'उमा-महेश्वर तो माता-पिता हैं हम पर्वतीय जनोंके। वे स्नेहसे शिशुको गोदमें लें या मस्तकपर बैठावें; किंतु जब शिशुमें अपनी कुछ समझ आ जाय—अपनी अधूरी-पूरी, भ्रान्त या ठीक समझसे वह जो कुछ सम्मान व्यक्त करनेका प्रयत्न करता है, वही तो पूजा है।'

राजपुरोहितको बड़ा खेद हुआ। राजाको वे समझा सकेंगे, ऐसी आशा उन्हें नहीं थी और नरेशको स्वस्थ देखनेकी भी दूसरी युक्ति सूझती नहीं थी। अन्ततः उन्हें वह अभिषेकजल लेकर लौटना पड़ा। स्वस्तिपाठके साथ केवल कुछ जलकण वे अपने नरेशके मस्तकपर डाल सके थे और एक कलश जल नरेशने अपने पीनेके लिये रख लिया था।

'श्रीरघुनाथकी जय!' राजपुरोहित अभी उस कक्ष-के द्वारतक पहुँचे थे कि उन्हें पीछेसे नरेशकी भावविह्वल जयध्वनि सुनायी पड़ी। वे पीछे मुड़े, इससे पूर्व नरेश दौड़कर उनके सम्मुख साष्टाङ्ग गिर गये थे—सुन्दर, स्वस्थ, युवा, निर्मल देह नरेश!

दो क्षण फिर चकित थकित राजपुरोहित हर्षविह्वल अपने यजमानकी सम्पूर्ण स्वस्थ कायाको देखते रहे और

तब उनके कण्ठसे अस्पष्ट गद्गद स्वर निकला—'श्रद्धा-की जय !'

× × ×

कुलूके श्रीरघुनाथ मन्दिरमें आज भी अयोध्यासे आया श्रीरघुनाथजीका वही श्रीविग्रह विराजमान है। देवताओंकी इस घाटीके वे अध्यक्ष हैं। विजयादशमीको घाटीके सब देवता उनका अभिवादन करने कुलू आते हैं।

आर्त

'बाबूजी ! आज तो आप कहीं न जायँ।' कोई नीचेसे गिड़गिड़ा रहा था। उसका लड़का बीमार था और उसकी दशा बिगड़ती जा रही थी। आज कम्पाउंडर आया नहीं था। अस्पताल बंद रखना कल शामको निश्चित हो चुका था। वृद्ध डाक्टर अपने मकानमें ऊपरी तल्लेमें बैठे अपनी लड़कीसे श्रीमद्भागवतका बंगला-अनुवाद सुन रहे थे।

'मैं डाक्टर हूँ बेटी !' स्निग्ध स्वरमें उन्होंने कहा, 'मेरी आवश्यकता हिंदू-मुसलमानको समानरूपसे है। कोई इस बुड्ढ़ेको मारकर क्या पावेगा ?'

'उत्तेजना मनुष्यको पिशाच बना देती है।' दूरसे 'अल्लाहो-अकबर' का कोलाहल सुनायी पड़ने लगा था। 'दादा कलकत्ते गये और पूरे दो सप्ताह हो गये, लौटे नहीं। मैं अकेली रह जाऊँगी यहाँ। नहीं, आप इस दंगेके समय कहीं नहीं जा सकते।' पिताके हाथके हैंडबेगको पकड़ लिया उसने।

'डाक्टर साहब !' नीचेसे करुण आवाज आयी। 'मेरा बच्चा। खुदा आपका भला करेगा। बच्चेको बचाइये।'

'मैं डाक्टर हूँ। मेरा कर्तव्य है यथासम्भव रोगीको

बचानेका प्रयत्न ।' बड़े स्नेहपूर्वक पुत्रीके मस्तकपर हाथ फेरा उन्होंने । 'मुझे कर्तव्यसे विमुख करेगी रुक्मा ? श्यामसुन्दर तो हैं ही तेरे समीप ।' सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णके भव्य चित्रकी ओर संकेत था डाक्टरका ।

'तो तुम शीघ्र लौट आना ।' हैंडबेग छोड़ दिया रुक्मिणीने । 'आज कुछ-न-कुछ होकर रहेगा । लक्षण अच्छे नहीं दिखायी पड़ते हैं ।' आप जानते हैं कि नोआखाली जिलेके श्रीरामपुरके लिए वह दंगेका प्रथम दिवस कितना भयंकर था ।

'जो सर्वेशकी इच्छा !' डाक्टर कच्चे आस्तिक नहीं हैं । 'जो वह चाहेगा, वही होगा । मैं यहाँ रहूँ तो भी क्या ? उसकी इच्छामें बाधा थोड़े ही दे सकूँगा ? तू उसीके विश्वासपर है बेटी !' वातावरणसे वृद्ध अपरिचित नहीं थे और न उसको छिपानेका प्रयत्न किया उन्होंने । एक हाथमें हैंडवेग और दूसरेमें इंजेक्शन बक्स लिये वे खट्-खट् सीढ़ियोंसे नीचे उतर गये ।

'दादा कलकत्तेसे नहीं लौटे ।' डाक्टरके ज्येष्ठ पुत्र किसी कार्यवश कलकत्ता गये थे और उन्हीं दिनों वहाँ दंगा हो गया था । अबतक उनका कोई पता लगा नहीं । पिता-पुत्री बराबर चिन्तित रहते हैं । आशङ्का उठती है—कहीं ········ । स्नेह मना करता है अमङ्गलधारणाको । 'वे अवश्य जीवित होंगे । आनेका मार्ग न मिलता होगा । रेलें भी तो रुकी पड़ी हैं ।'

रुक्मिणीने पुस्तक वहीं खुली छोड़ दी । वह खिड़कीके समीप आकर खड़ी हो गयी और अपने वृद्ध पिताकी

ओर एकटक देखती रही। वे एक मैले-कुचैले मुसलमान-के पीछे सड़कपर चले जा रहे थे। उस मूर्ख मुसलमानने उनके हाथसे हैंडबेग भी नहीं लिया था।

'बेचारे बापू' एक दीर्घ निःश्वास लिया उसने। कोलाहल समीप आता जा रहा था। पिता दृष्टिसे ओझल हो चुके थे। 'श्रीद्वारिकानाथ उनकी रक्षा करें।' खिड़की बंद कर दी उसने। सीढ़ियोंसे नीचे उतरकर बाहरी द्वार भी बन्द कर दिया। आज न तो मजदूरनी आयी थी और न नौकर। सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। ऊपर आकर वह सीधे पूजाकी कोठरीमें चली गयी। चित्रपटके सम्मुख सुन्दर काश्मीरी आसन बिछा था। बैठनेके बदले आसनपर मस्तक रख दिया उसने।

(२)

'अल्लाहो-अकबर! धम्-धम्, धड़-धड़', वह उठी और खिड़की खोलकर नीचे झाँका उसने। समीपका मकान धू-धू करके जल रहा था। कुछ लोग पेट्रोलके पीपे खोल रहे थे। कुछ मकानोंपर छिड़क रहे थे। हाथों-में छुरे, भाले, तलवार, लाठी—उद्धत भीड़ चीख रही थी। गालियाँ बक रही थी। कौन कह सकता था कि वे मनुष्य हैं। पिशाचोंका ताण्डव हो रहा था नीचे सड़कपर।

'तेल डालो और माचिश लगा दो।' उसका हृदय

धक्से हो गया। बाहरी फाटकसे कूदकर सामने छोटे मैदानमें भीड़ भर गयी थी। पेट्रोलके पीपे सड़कसे घेरेमें फेंके किसीने दो तीन। कुछ लोग मकानका दरवाजा पीट रहें थे। 'इस बुड्ढे खूँसटके यहाँ रक्खा भी क्या होगा। एक काइयाँ है। बैंकमें ही रखता होगा पूरा मालमता। दरवाजा नहीं टूटता तो लगाओ माचिश और पार करो।'

'गजबकी खूबसूरत है !' किसी दुष्टकी दृष्टि खिड़कीपर पड़ गयी। भद्दे ढंगसे हँसते हुए वह चिल्लाया 'चाँद है चाँद।' रुक्मिणीने पीछे हटकर खिड़की बन्द कर ली। उसने देख लिया था कि एक टीन फोड़ डाला गया है और कई गुंडे पेट्रोल छिड़कने लगे हैं उसके मकानपर।

'फूँको मत ! मैं तो उस खूबरूको लेकर रहूँगा। आज अभी......।' उसके अश्लील शब्दोंपर आसुरताको भी लज्जा आयी होगी। दरवाजेपर और भयङ्कर आघात होने लगे।

'दादा, बापू !' वह उन्मत्त-सी चिल्ला उठी। इधर-उधर कमरोंमें दौड़ने लगी। डेस्क, सन्दूक भड़भड़ा डाले उसने। 'कोई तो बचाने आता ! कहीं भी तो ऐसा स्थान नहीं, जहाँ इन पिशाचोंसे परित्राण मिले छिपने-पर। कोई भी ऐसा अस्त्र-शस्त्र तो नहीं, जिसे लेकर वह एकाकी अबला इन नृशंस असुरोंका सामना कर सके।'

साड़ी पृथ्वीमें लोट रही थी। शरीर पसीनेसे लथपथ

हो रहा था। नेत्र टेसूके फूल बन गये थे। उनमेंका पानी सूख गया था। वह काँपती, लड़खड़ाती एकसे दूसरे कमरेमें दौड़ रही थी।

'बापूका पिस्तौल!' दौड़कर बैठकमें पहुँची। 'हाय, डेस्क तो बन्द है। टूटता भी तो नहीं।' पत्थर दे मारा उसने डेस्कपर। द्वारपर प्रहार बढ़ते जा रहे थे। वह चरमरा रहा था। भीड़ चिल्ला रही थी। वह डेस्कपर पत्थर पटक रही थी।

'अररर धड़ाम्!' कर्राकर द्वार भीतरकी ओर गिर पड़ा। भीड़का तुमुलनाद गूँजा 'अल्लाहों-अकबर!' डेस्क टूटा नहीं था। भागी वह बैठकसे ऊपरको। ऊपर बड़ी भीड़ मकानमें पिल पड़ी थी।

'तुम, हाँ तुम्हीं अब मुझे बचाओ! श्यामसुन्दर!' सीधे दौड़ती हुई पूजाकी कोठरीमें पहुँची। उस कोठरी-का द्वार बंद करना भी भूल गयी थी। मस्तक पटक दिया उसने मूर्तिके सम्मुख बिछे अपने ही नित्य बैठनेके आसनपर। 'रुक्मिणी तुम्हारी है—हाँ तुम्हारी ही है यह। अपनी रुक्मिणीकी ही भाँति हाथ पकड़कर दस्युओं-के बीचसे उठा लो या फेंक दो इन भूखे भेड़ियोंके सम्मुख एक मांस-खण्डके समान।'

उसे लगा कि कमरा आलोकसे जगमगा उठा है। दिनमें भी कमरेमें कोई दूसरा सूर्य उदित हो गया है। आगे कुछ देख नहीं सकी वह। संज्ञाशून्य हो गया था उसका शरीर।

'भागो ! भागो !' पेट्रोलके खुले पीपेमें कोई चिनगारी पड़ गयी थी। मकानपर छिड़के पेट्रोलने अग्नि पकड़ ली थी। लपटें क्षितिजको चूमने ऊपर दौड़ रही थीं और मकानमें घुसी हुई भीड़ सिरपर पैर रखकर मकानसे बाहर।

(३)

'डाक्टर साहब ! इस समय आप मेरे घरसे बाहर हर्गिज नहीं जा सकते।' वही मैला-कुचैला मुसलमान सामने खड़ा था, जो डाक्टर को यहाँतक ले आया था। द्वार बंद कर दिया था उसने। 'आप होशमें नहीं हैं।'

'तुम्हारे लड़केको अब दूसरे इंजेक्शनकी जरूरत नहीं होगी।' अनुभय किया डाक्टरने। 'मैं दवा दे चुका हूँ। उसका ज्वर उतर रहा है। हाय, मेरी रुक्मा। उधर ही से शोर आ रहा है। वह देखो, मेरी कोठीके पास लपटें उठ रही हैं। तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।' सच-मुच बृद्धने उस मैले-गंदे मूसलमानके पैरोंपर मस्तक रख दिया।

'लड़का मर भी जाय तो मैं परवा नहीं करता।' जल्दीसे पीछे हटकर उसने डाक्टरको उठाया अपने पैरोंसे। 'वहाँ शैतानोंके बीचमें मैं आपको नहीं जाने दे सकता। किसी भी तरह नहीं। मौतके मुँहमें आप जा रहे हैं। वे सब आज न मुसलमान हैं और न आदमी।

शैतान सवार है उनके सिर। कुछ नहीं देखेंगे वे। आप उम्मेद नहीं कर सकते कि वे आपको जिंदा छोड़ देंगे।' दरवाजेसे पीठ लगाकर वह अटल, अडिग खड़ा हो गया।

'मरने दो फिर एक काफिरको।' डाक्टर अधीर हो रहे थे। पिस्तौल लाये होते तो अवश्य उसे गोली मार देते और निकल जाते सड़कपर। 'हाय, रुक्माका पता नहीं क्या हाल होगा। मुझे जाने दो। सबाब होगा तुम्हें।'

'अपना सबाब मैं खूब जानता हूँ।' इस भयानक परिस्थितिमें भी वह हँस पडा। 'मैं इन्सान हूँ और मुसलमान हूँ। मैं जानता हूँ कि मुझे अपने पड़ोसीके साथ कैसे रहना चाहिये। अपनेपर एहसान करनेवालेके लिये क्या करना चाहिये। मुझे शैतान धोखा नहीं दे सकता। क्योंकि मैं एक ठीक मुसलमान हूँ।'

'मुझे किसी भी तरह जाने दो।' डाक्टर फिर गिड़गिड़ाये। 'मैं पहुँचते ही तुम्हें पाँच हजार रुपये दूँगा।' उनकी वाणीमें आग्रह, अनुनय एवं करुणा, सब भर गयी थीं। भीड़ लौट रही थी। कोलाहल इधर ही बढ़ता आ रहा था।

'डाक्टर साहब!' जैसे सावधान कर रहा हो वह। 'आप मुझे फुसला नहीं सकते। बच्चा नहीं हूँ मैं। लोग इधर ही आ रहे हैं। हमीदाकी माँ! अगर कोई आवाज दे तो तू कह देना कि कोई घरमें नहीं है। वह भी तो तुम लोगोंके साथ भीड़में ही गये हैं।' अपनी स्त्रीको आदेश दिया उसने।

'मैं झूठ नहीं बोलता।............'

'अच्छा, मेहरबानी करके जबान बन्द कीजिये। कतई बन्द।' उसने कठोर स्वरसे कहा। भीड़का कोलाहल बहुत पास आ गया था। 'अगर आपने फिर कुछ कहा तो मैं मजबूर होऊँगा कि आपके हाथ-पैर बाँध दूँ और मुखमें......।' अपना तेलसे चीकट बदबूदार गमछा दाहिने हाथसे उठाकर डाक्टरके सामने कर दिया उसने।

बेचारे डाक्टर—वे समझ गये कि आज बुरे फँसे हैं। यह कठोर आदमी जो कुछ भी कह रहा है, उसको करनेमें उसे एक मिनट भी नहीं लगेगी। उनके वृद्ध शरीरमें इस हट्टे-कट्टे तरुणका प्रतिकार करनेकी शक्ति नहीं है। नेत्रोंमें अश्रु भरकर बड़ी दीनतासे उन्होंने उसकी ओर देखा।

'आप वहाँ बैठ जाइये।' कण्ठस्वर मृदुल हो गया था। एक खाली चारपाईकी ओर संकेत था उसका, जो एक कोठरीमें बिछी थी। 'भीड़को निकल जाने दीजिये। मैं जाकर बिटियाका पता ले आता हूँ। हो सकेगा तो उसे यहीं लिवा लाऊँगा। आपका वहाँ जाना ठीक नहीं है जबतक हालत सुधर नहीं जाती, आपको इसी गरीबखानेको अपना मकान मानना होगा।'

× × ×

(४)

'बेटी ! बेटी रुक्मा !' सारी कोठी जल गयी थी। मकानका बहुत-सा भाग टूटकर गिर पड़ा था। अभी भी लपटें इधर-उधर उठ रही थीं। मेज, कुर्सी तथा दूसरे लकड़ीके जलने योग्य पदार्थ अब भी धधक रहे थे। उस्मानका ही साहस था उस अवें-से तपते भट्ठे में प्रवेश करनेका।

' जल तो नहीं गयी। वे सब उठा तो नहीं ले गये ?' वह बार-बार पुकार रहा था। कुछ आधी गिरी कोठरियों-में भीतर जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं था। भीतर धुआँ भरा था और लपटें फुफकार रही थीं। झाँककर, पुकारकर वह इधर-उधर ढूँढ़ रहा था किसीको।

' ओह, मेरी बिटिया !' जैसे कोई निधि मिल गयी हो। जीनेका पता नहीं था। गिरे हुए ईंटोंपरसे ही बचता-बचाता ऊपर आया था वह। आधी छत गिर चुकी थी। मोटे देशी जूतेके भीतर भी पैरोंके तलवे भुने जा रहे थे। एक कोनेमें एक कोठरी पूरी खड़ी थी। उसका बाहरी भाग तो जल गया था, लेकिन दरवाजा बचा था और शायद अग्निकी लपटें उसमें घुसनेकी हिम्मत नहीं कर सकी थीं। धुआँ जरूर भर गया था उसमें।

दूरसे ही उसने देख लिया कि कोई लड़की जमीनपर सिर रक्खे औंधी पड़ी है। और कुछ देखनेके लिए न अवकाश था और न वह देखना ही चाहता था।

धड़धड़ाकर कमरेमें घुस गया। लड़की मूर्छित थी। उसने खुले सिरपर हाथ रखा।

'श्यामसुन्दर !' स्पर्शने उसे चौंका दिया। चीख पड़ी वह। अपने आप घुटनोंमें अधिक सिकुड़नेका प्रयत्न किया उसने। वह समझ गया कि बुरी तरह डर गयी है लड़की।

'बेटी !' बड़े प्रेमभरे स्वरमें पुकारा उसने।

'बापू ! चेतना लौट आयी। उसने उठनेका प्रयत्न करते हुए बिना देखे ही प्रश्न किया। 'बापू कहाँ हैं ?' तुम यहाँ कैसे आये ? बापूका क्या किया तुमने ?' उसे देखते ही लड़कीने पहचान लिया। चौंक गयी, डर गयी और ढेर-से प्रश्न कर डाले।

'मैं दुश्मन नहीं हूँ। डरो मत।' आश्वस्त करना पहले जरूरी था। स्निग्ध स्वरका प्रभाव लड़कीपर पड़ रहा है, यह उसने लक्षित कर लिया। 'तुम्हारे बापू मेरे घर सुरक्षित हैं। भले चंगे हैं वे।'

'बापू अच्छे हैं ?' बड़ी उत्सुकतासे पूछा उसने।

'हाँ, वे अच्छे हैं। तुम्हें भी उन्होंने बुलाया है। तुम्हारा यहाँ रहना अब भी खतरेसे खाली नहीं है।' बहुत धीरे-धीरे कह गया वह।

'तुम्हारे घर ? एक मुसल्मानके घर ?' आशंकासे उसका हृदय भर गया। 'नहीं—मैं तुम्हारे घर नहीं जाऊँगी। तुम यहाँसे चले जाओ।' उसने फिर भरी दृष्टिसे अपने सिंहासनस्थ भगवान्‌की ओर देखा। उसे लगा—वह चित्र-मूर्ति मुसकरा रही है।

'मुसल्मानके घर नहीं अपने बापके घर—अपने घर।' उस गंदे मुसल्मानके नेत्रोंमें पवित्र उज्ज्वल अश्रु झलमला आये। 'बेटी! क्या मुसलमान इन्सान नहीं होता?'

'हो सकता है।' अविश्वासकी भी एक सीमा होती है। हृदय अच्छी प्रकार हितेच्छु हृदयको पहचाननेकी शक्ति रखता है। 'मैं अपने श्यामसुन्दरको छोड़कर कहीं नहीं जा सकती।'

'इनको भी ले चलो बेटी!' उसके नेत्र झरने लगे। दूसरोंकी धार्मिक भावनाका आदर करना वह खूब जानता है। 'इस गरीब बापके झोंपड़ेको भी इनके कदमोंसे पाक बनने दो। मैं तुम्हारे और इनके लिए एक पूरी कोठरी खाली कर दूँगा बेटी! कोई दिक्कत नहीं होगी तुम्हारी पूजामें।'

वचनोंमें अन्तरकी सच्चाई थी। उसने चित्रपटको उठाकर हृदयसे लगा लिया और उसी मुसल्मानके पीछे-पीछे चल पड़ी। हृदयसे लगा वह नटनागर ज्यों-का-त्यों मुसकरा रहा था।

जिज्ञासु

'प्रकृति भी भूल करती है।' अपने आप डाक्टर हडसन कह रहे थे। उन्होंने साबुनसे हाथ धोये और आपरेशन-ड्रेस बदलने लगे। 'जड नहीं, जड तो कभी भूल नहीं करता। उसमें भूल करनेकी योग्यता ही कहाँ होती है। मशीन तो निश्चित ही कार्य करेगी।'

आज जिस शवका डाक्टरने आपरेशन किया था, उसने एक नयी समस्या खड़ी कर दी। बात यह थी कि जिस किसीका भी वह शव हो, इतना तो निश्चित ही था कि उसने अपनी लगभग साठ वर्षकी आयु पूर्ण की है और उसका शरीर सिद्ध करता है कि वह एक स्वस्थ-सबल पुरुष रहा है। डाक्टरको आश्चर्यमें डाल दिया था उस शवकी शरीर-रचनाने। ऊपरसे देखनेपर सामान्य पुरुषके शरीरमें और उसमें कोई भेद नहीं था; किन्तु भीतर? हृदय दाहिनी ओर, यकृत बायीं ओर। सम्पूर्ण अन्त्र एवं स्नायुजाल साधारण शरीर-रचनासे ठीक विपरीत दिशामें।

'जैसे रचनाकारने सभी आँतोंको उलटी दिशामें रखकर परीक्षण किया हो कि इस दशामें उसकी कृति ठीक काम करती है या नहीं।' डाक्टरके मस्तिष्कमें आपरेशनके समयसे ही यह प्रश्न चक्कर काट रहा था।

उन्होंने शवको मेजपर ही सुरक्षित छोड़ दिया था और उसके पूरे भीतरी शरीरका फोटो लेनेके लिए कैमरामैन-को बुलवा भेजा था। उनके सहकारीने विस्तृत विवरण नोट कर लिया था। यह भी निश्चय हो गया था कि यह शव प्रधान विज्ञानशालाको दे दिया जायगा।

'भूल एवं परीक्षण तो चेतन ही करता है।' डाक्टर-का ध्यान शरीर-रचनाकी अद्भुतताके बदले कारणकी ओर अधिक था। 'तब क्या सृष्टिका सचमुच कोई चेतन रचनाकार है?' उन्हें स्वयं अपने विचारोंपर आश्चर्य हो रहा था। ऐसे भद्दे अन्धविश्वासोंकी बात सोचनेमें भी उनका परिष्कृत मस्तिष्क झिझकता था।

बचपनमें माता-पिताकी आस्तिकताने उन्हें पूर्णतः प्रभावित किया था। प्रत्येक रविबारको अपनी माताकी अँगुली पकड़कर वे गिरजाघर जाया करते थे। नेत्र बंदकर किसी अज्ञेय सत्ताका अनुभव करनेका बहुत अधिक गम्भीर प्रयत्न होता था, मानो वहाँ पादरी कहा करते थे 'यह बच्चा निश्चय संत होगा।'

यह भी स्मरण है कि हाई स्कूल तथा कालेजमें सहपाठी उनका परिहास करते थे। आस्तिकता, धर्म एवं ईश्वरका पक्ष लेकर विवाद करनेवालोंमें वे समर्थक पक्षके सबसे उत्साही छात्र थे। प्राय: उनका परिहास करनेके लिए ही सहपाठी ऐसे विवाद प्रारम्भ करते थे और भावुकतावश वे शीघ्र आवेशमें आ जाते थे।

संगतिका प्रभाव पड़ता ही है। निरन्तरके व्यङ्ग एवं आक्षेपने सन्देहका बीज अंकुरित कर दिया। इतनेपर

भी बाल्यसस्कार प्रबल रहे। परीक्षणका निश्चय हुआ और माता-पिताकी इंजीनियर बनानेकी इच्छाके विरुद्ध मि० हडसन आज डाक्टर हडसन हैं। उन्होंने शव-परीक्षणमें अत्यधिक श्रम किया। मरते समय पशु एवं मनुष्योंकी भरपूर जाँच की। जीवित खरगोशोंको चीर-कर जीवको पकड़नेका प्रयत्न किया। अन्ततः वे इस निश्चयपर पहुँचे। 'शरीरमें जीव-जैसी कोई सत्ता नहीं। ईश्वर सचमुच मानवका मानसपुत्र ही है और धर्म मानव-दुर्बलताओंका संघीभाव। ईश्वर एवं धर्मका मूल भय एवं मोहजन्य अविश्वास ही है।'

'यदि सृष्टिकार कोई चेतन हो' डाक्टरकी निर्णीत धारणाओंपर आजके शवने पानी फेर दिया था। वे आमूल नये सिरेसे विचार करनेको बाध्य हो गये थे। 'तब तो जीव भी होगा। ईश्वर भी होगा और तब धर्म अनिवार्य हो रहेगा।' आज मनमें पुनः दुविधा उत्पन्न हो गयी थी। इस अन्तर्द्वन्द्वसे त्राण पानेका कोई मार्ग दिखायी ही नहीं देता था।

'इस विषयमें भारतीयोंने सबसे अधिक अन्वेषण किया है। इतने दिनोंके अनुभवसे आज डाक्टर जान चुके हैं कि डाक्टरी चीर-फाड़से जीवके सम्बन्धमें कुछ भी जानना सम्भव नहीं है। सच्चा जिज्ञासु भूल भले ही जाय, सदाके लिए पथभ्रष्ट नहीं हो सकता। डाक्टरकी जिज्ञासा सच्ची थी। उन्हें भारत-प्रबासका निश्चय करनेमें दो क्षणकी भी देर नहीं लगी।

× × ×

(२)

'मैं भी बुद्ध हो रहूँगा। गौतम भी तो मनुष्य ही थे। तपस्या यदि उनके लिए सम्भव थी तो मेरे लिए अशक्य नहीं होगी।' डाक्टरने बौद्धधर्ममें दीक्षा ले ली। बिलायतमें वे अमिताभके सम्बन्धमें बहुत अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ आते ही कोट-पतलून छोड़कर मुण्डित मस्तक होने एवं पीले बस्त्रोंको पहननेमें उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ। काँटा-चम्मच तो छूट ही गया था, अन्न छोड़कर वे पूरे फलाहारी हो गये।

'तपस्याके लिए तो हिमालयका प्रदेश ही भारतमें श्रेष्ठ माना गया है।' सम्पूर्ण भारतीय ढंग अपनानेका निश्चय हो गया था। बिना पूरी विधिके भारतीय तत्त्व-ज्ञान भला कैसे मिलेगा। 'एक बार जान लूँ, फिर उपलब्धिके आधुनिक युगानुरूप वैज्ञानिक साधन आविष्कृत करना सरल हो जायगा।' अन्वेषणकी लगन और उसके लिए पराकाष्ठाका त्याग यूरोपीय सभ्यताकी अपनी वस्तु हैं।

नैनीतालसे कुछ नीचे, सुन्दर स्वच्छ सलिलकी कल-कलवाहिनी छोटी पर्वतीय सरिताके किनारे, गरम जलके झरनेसे कुल दो सौ गज दूर, पुष्पित हरित लता-तरुओंके मध्य एक कुटिया बन गयी। यों बरगदका वृक्ष समीप था और उसीको बोधिवृक्ष बनानेका स्वप्न था डाक्टरके मनमें।

आसपासके लोगोंमें कुतूहल स्वाभाविक था। भीड़

यों ही गोरे चमड़ेका साधु देखकर आने लगी थी। जब यह ज्ञात हुआ कि वह तो वटमूलकी वेदिकापर सात दिनसे बिना खाये-पीये बैठा है, बैठे-बैठे ही सो लेता है, मेला एकत्र होना स्वाभाविक था। डाक्टर इसकी पहलेसे सम्भावना कर चुका था। उसकी सावधानीका स्वरूप था दढ़ियल सिक्ख पहरेदार। वह भीड़को वहाँ पहुँचनेसे पहले ही रोककर लौटा देता था। लोगोंके पुष्प, चन्दन, फल उसकी तपस्यामें विघ्न डालने न पहुँच सके।

'इस प्रकार तो मृत्यु ही हो जायगी।' उसने पहले नहीं सोचा था बुद्धकी मानसिक एवं शारीरिक शक्तिके सम्बन्धमें। 'मैं यूरोपियन हूँ। गौतमके समान वातावरणमें रहनेका पूर्वाभ्यास मुझे है नहीं।' शरीर दुर्बल एवं अशक्त हो गया था। धैर्यको कष्टोंने विचलित कर दिया था। क्षुधा-पिपासा किसे व्याकुल नहीं कर देती और वह तो सात दिनसे उस स्थानसे उठा भी नहीं था।

'मन ?—मन तो ऐसे अटपट चाट एवं भोजनोंका बराबर चिन्तन करता है, जिनकी मैंने कभी पहले कल्पना भी नहीं की थी। जिन बाजारू वस्तुओंसे मैंने सदा घृणा की है, वही आज मुझे प्रलुब्ध कर रही हैं।' मन प्रतिक्रिया कर रहा था बलप्रयोगसे विद्रोही होकर। अशान्त हो उठा था वह तपस्वी। उसके लिए इस कष्ट-सहिष्णुताका कोई अर्थ रह नहीं गया।

'भूल तो मेरी ही है।' उसे स्मरण हुआ कि पूरे चालीस दिनके उपवासके अनन्तर गौतमने भी तपस्याका

परित्याग तो उसे व्यर्थ समझकर ही किया था। 'मैं भी कैसा मूर्ख हूँ।' उसने धीरेसे पहरेदारको पुकारा और उसे सन्तरेका रस ले आनेकी आज्ञा दे दी।

लोकापवादसे तो वे डरते हैं, जिनका उद्देश्य लोकैषणा होती है। 'लोग क्या कहेंगे ?' सच्चे हृदयोंमें यह प्रश्न कभी उठता ही नहीं। अवश्य ही शारीरिक दुर्बलता उसे वहाँसे दस-पन्द्रह दिन कहीं जाने न देगी।

(३)

'तो तुम्हें पुस्तकोंमें कुछ भी नहीं मिला ?' वे जटा-जूटधारी महात्मा हँस पड़े। प्रणामके अनन्तर प्रश्नका अवकाश भी नहीं दिया था उन्होंने। 'साधुओंमें भी तुम्हें कोई मार्गदर्शक उपलब्ध न हुआ ?'

'मेरा दुर्भाग्य !' रो पड़ा वह। पूरे दो वर्ष तो वह अपनी पहाड़ी कुटियामें ग्रन्थोंके पीछे पड़ा रहा। बौद्ध, जैन, शांकरवेदान्त, रामानुज तथा दूसरे वैष्णवोंके ग्रन्थ, तन्त्रग्रन्थ सब छान डाले उसने। सबके सिद्धान्त, प्रक्रियाका बड़ा विद्वान् अवश्य हो गया वह, किन्तु क्या मिला उसे ? ग्रन्थोंमें अनेक प्रकारके योग, अनुष्ठान, उपासनाएँ उसे मिलीं। सबका मूल था, 'किसी गुरुके शरणागत होकर तब कुछ करो।' अन्ततः दो वर्ष बाद वह योग्य गुरुके अन्वेषणमें निकला। ग्रन्थोंके अध्ययनने उसे महापुरुषके सम्बन्धमें एक निश्चित धारणा दे दी थी।

उसे ठगा नहीं जा सकता।

तीन वर्षसे कुछ अधिक ही भटकता रहा है। पूरे भारतके दो चक्कर कर चुका है। दुर्गम वनोंमें, पहाड़ोंमें, सुदूर गाँवोंमें, पता नहीं कहाँ-कहाँ भटका है। प्रायः सभी कहीं उसका स्वागत हुआ है। बहुत-से स्थानोंपर उसे सिद्धियोंद्वारा आकर्षित करनेका प्रयत्न हुआ है। विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएँ उसके लिए व्यर्थ थीं। सिद्धियाँ उसे आकर्षित न कर सकीं। रहस्य उसे भ्रान्त करनेमें असमर्थ रहा। वह जिज्ञासु था। सच्ची भूख थी उसमें अध्यात्मकी। वह भूख जो आडम्बरको अपनी धमकसे भस्म कर देती है।

'यह कैसे कहूँ कि महापुरुषोंमें कोई मुझे कृतार्थ करनेमें समर्थ न थे।' जिज्ञासु नम्र होता है। उसमें सम्पूर्ण नम्रता विद्यमान थी। आज वह जिस दुर्बल गौरवर्ण तेजस्वी महापुरुषके समीप पहुँच गया था, उन्होंने पता नहीं क्यों उसके हृदयको अत्यधिक आकर्षित कर लिया था। यह दूसरी बात है कि वे बहुत तो क्या थोड़े भी प्रसिद्ध नहीं थे। उन्हें सम्भवतः आस-पास कोई जानता भी नहीं था। यहाँ उन्हें आये भी दो-तीन दिन ही हुए हैं और वे साधारण साधुकी भाँति मन्दिरके अतिथि हैं।

मन्दिर और मूर्तियोंमें उसे कोई आकर्षण हो, ऐसी बात नहीं। यों ही आज इधर घूमने आकर मन्दिरमें चला आया था। पुजारीजी उससे परिचित हैं। एक कोनेमें आसन लगाये महात्मापर दृष्टि पड़ गयी। उसे

आकर्षण जान पड़ा और समीप जाकर उसने दण्डवत् प्रणाम किया। उसे ज्ञात है कि वैष्णव साधुओंको इसी प्रकार प्रणाम किया जाता है। भूमिपर बैठनेमें अब उसे कोई हिचक नहीं होती।

'सम्भवत: मेरे पूर्वकृत पाप बहुत ही प्रबल हैं।' भारतीय दार्शनिक सिद्धान्त उसे कण्ठ हो गये हैं। यों महात्माजीने पहुँचते ही उसके अध्ययन एवं साधु-अन्वेषणके सम्बन्धमें बिना बताये ही जो कुछ कहा था, उस सिद्धि तथा चमत्कारकी ओर उसने ध्यान नहीं दिया। उसके लिए अब वह साधारण वस्तु हो गयी थी।

'यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:' महात्माजीने केवल श्रुतिके एक मन्त्रकी ओर संकेत भर किया।

'ओह, तब क्या वे दयामय मुझे अपनाना नहीं चाहते?' जैसे हृदयमें एक प्रकाश हो गया हो। उसने समझ लिया कि उसका भटकना व्यर्थ है। साधनों एवं अनुष्ठानोंकी कोई महत्ता नहीं। एक क्षणमें उसे इतना कुछ प्राप्त हो गया, जितना दो वर्षके अध्ययन तथा तीन-सवा तीन वर्षके निरन्तर भ्रमणने भी नहीं दिया था। मस्तक रख दिया उसने महात्माजीके चरणोंमें।

'तुमने कभी उसकी ओर देखा भी है? कभी उसे पुकारा है?' महात्माजी गम्भीर हो गये। 'माता कभी खेलमें लगे बच्चेको उठाने नहीं दौड़ती। रोता, चिल्लाता और 'माँ-माँ!' पुकारता शिशु ही उसे आकर्षित करता है। तुम्हें यह भी जान लेना चाहिये कि माताको पुकारनेके लिए न कोई विधि होती है और न नियम।'

उसके नेत्रोंसे बूँदें नहीं, धारा चल रही थी। आज उसने पथ पाया था और पथ-प्रदर्शकके चरण छोड़नेकी उसकी कोई इच्छा न थी।

(४)

'यह तो कल्पना है, मानी हुई वस्तु है।' उसकी पुरानी पर्वतीय कुटी अब एक भव्य मन्दिरका रूप ले चुकी थी। खूब सुसज्जित था मन्दिर। बड़ी सुरुचिपूर्ण थी उसकी रचना। चारों ओर पुष्प-वाटिका तथा तुलसी-कानन सुशोभित हो रहा था। मन्दिरमें मूर्तिके दोनों पार्श्वोंकी धूप-दानियोंसे सुगन्धित धूम्र उठ रहा था। सम्मुख स्वर्णदीपमें पञ्चशिखाएँ जगमगा रही थीं। रजत-आसनपर सुपूजित दक्षिणावर्त शङ्ख रक्खा था और सजे रक्खे थे पूजाके रजत-पात्र। आसनके वस्त्र भी कौशेय थे। द्वारपरका नीला मखमली पर्दा एक ओर सिकुड़ा टँगा था।

'मैं सत्य चाहता हूँ। कल्पना मुझे नहीं चाहिये।' गलेमें तुलसी की कंठी बाँधे, भालपर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये, पीतकौशेय धोती एवं पीतोत्तारीयमें वह गौरवर्ण स्वयं दूसरी देवमूर्ति बन गया था। आरती कर चुका था और नित्यकी कण्ठस्थ प्रार्थनाओंका क्रम समाप्त हो गया था।

'मैंने समझा था, यह कल्पना ही मुझे सत्यतक पहुँचा देगी।' दण्डवत्-प्रणाम करनेके पश्चात वह वहीं

घुटनोंके बल बैठ गया। बाहरकी भीड़को आरती और तुलसीदल देना आज वह भूल चुका था। लोगोंने देख लिया कि आज वह जल्दी मन्दिरसे निकलता नहीं दीखता, तो धीरे-धीरे खिसकने लगे।

'मैं तुम्हें पुकारता हूँ—केवल तुम्हें।' व्याकुलता अपनी सीमापर पहुँच गयी थी 'मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो। कैसे हो। यह जाननेके लिए ही तो तुम्हें पुकारता हूँ। मैं उसे पुकारता हूँ, जो विश्वका आदि कारण है। जो मूलस्रष्टा है। जो सबका कारण है—सम्पूर्ण कारणोंका परम कारण। मैं उसे जानना चाहता हूँ और इसीलिए उसे पुकारता हूँ।'

उसे पता नहीं लगा कि कब भगवान भास्कर ठीक मध्य क्षितिजपर पहुँचे, कब वे प्रतीचीकी ओर आकर्षित हुए और कब अपने साथ सम्पूर्ण अवनीको अरुणिमाके समुद्रमें स्नान कराके उन्होंने अपने विश्राम-भवनके द्वार-पर तमस्की काली यवनिका गिरा दी।

उसे पता नहीं कि सेवकोंने उससे कब क्या आग्रह किया भय एवं संकोचभरे मन्द स्वरमें। कब किसने धीरेसे मन्दिरमें प्रवेश करके प्रदीप जला दिये, यह भी वह नहीं जानता। उसने सबको मना जो कर दिया है कि जब वह भगवान्के सम्मुख हो तो उससे कुछ न पूछा जाय। कुछ न कहा जाय, वह बैठा रहा नहीं, मूर्तिके चरणोंमें स्थिर अटल उसके नेत्र झरते रहे। लोगोंने आश्चर्यसे देखा कि आज पहली बार वह पता नहीं, किस भाषामें क्या बड़बड़ा रहा है। कौन जानता था

यहाँ उसकी मातृभाषा !

'तुम सुनोगे ! तुम्हें सुनना होगा !' प्रार्थनाकी नम्रता प्रेमाग्रहमें परिणत हो गयी। 'आज तुम्हें मेरी पुकार सुननी ही होगी ! मैं बिना तुम्हें सुनाये यहाँसे अब नहीं उठता !' व्याकुलताने चरम सीमाका अतिक्रमण किया।

अकस्मात उसके बंद नेत्र खुल गये। उसे लगा—किसीने पलकोंको पकड़कर नेत्र खोल दिये हैं। मन्दिर एक अलौकिक शीतल प्रकाशसे जगमगा रहा था। उसे जान पड़ा—सिंहासनपर ललित त्रिभंगीसे खड़ी मुरलीधारी काले पत्थरकी मूर्ति मन्द-मन्द मुसकरा रही है—सचमुच मुसकरा रही है। उसमें जीवन आ गया है। उसके ऊपरका पीताम्बरका पटुका हिल रहा है और···

वह वैसे ही बैठा रहा वहाँ। एक दिन, दो दिन और तीसरे दिन शामको सहसा हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ। लोगोंको लगा कि वह पागल हो गया है। मूर्तिको प्रणाम करनेके बदले सिंहासनपर चढ़कर अंकमाल दी उसने। बिना कुछ कहे-सुने वहाँसे चला गया।

हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह कोई वैज्ञानिक मार्ग बतावेगा विश्वको जीव, ईश्वर एवं धर्मके अनुसन्धानके सम्बन्धमें। लेकिन उसका तो पता ही नहीं है। क्या आपमें-से किसीने उसे देखा है ?

अर्थार्थी

'बेशर्म कहींका' सरदारकी आखें गुस्सेसे लाल हो गयीं। फड़कते ओठोंसे उन्होंने डाँटा। 'पासमें तो महज एक बूढ़ा ऊँट है और हिम्मत इतनी।'

'कसूर माफ हो।' अरब अपमान सह नहीं सकता। अगर उसे रोशनका खयाल न होता तो तेग बाहर चमकती होती। लेकिन वह समझ नहीं सका था कि उसने गलती क्या की है। आखिर वह काना-कुबड़ा नहीं है। बदशकल भी नहीं है और कमजोर भी नहीं है। अरब न तो रोजगार करता और न खेती। किसी नखलिस्तानकी चढ़ाईमें वह भी दुश्मनसे आधे दर्जन ऊँट और बड़ा-सा तम्बू छीन सकता है। सरदारके ऊँट और उसका तम्बू भी लूटका ही है।

'जैसे कारूँका खजाना इनके वालिदने इन्हींके लिए रख छोड़ा हो।' सरदारकी तेज जबान पूरे कबीलेमें मशहूर है। 'कलकी सुबह तुम्हें मेरे कबीलेमें नहीं मिलना चाहिये। तुम जानते हो कि मैं अपने उसूलका पक्का हूँ और दुबारा कसूर माफकी दरख्वास्त कतई कबूल नहीं होगी। मुँह काला करो!' बूढ़ा बड़े जोरसे चिल्ला रहा था। उसकी आदतसे वाकिफ होनेकी वजह किसीने खयाल नहीं किया और कोई आया नहीं।

'मैं तेरे टुकड़े नहीं खाता और न कबीला तेरे बापकी पुश्तैनी जायदाद है।' आदमीके सब्रकी भी एक हद होती है। बहुत छोटी हद होती है अरबके सब्रकी। 'शामको पंचायत होगी और वही फैसला करेगी कि मैं कबीला छोड़ दूँ या तू अपनी सरदारी कायम रखनेके लिये मेरे साथ तेगके दो हाथ करेगा।' एक झटकेसे वह तम्बूके बाहर चला गया। उसने परवा नहीं की कि बूढ़ा क्या बड़बड़ा रहा है।

इस कबीलेमें सरदार ही सब कुछ नहीं है। वह महज मुखिया है कबीलेका। उसका मुखियापन भी तभीतक है, जबतक कोई दूसरा उसे ललकार न दे या हर ललकारनेवालेको वह नीचा न दिखाता रहे। कबीलेका सरदार सबसे बहादुर और मजबूत आदमी ही रह सकता था। आज बूढ़े सरदारको, जो बूढ़ा होकर भी फौलादका बना जान पड़ता था, नौजवान महमूदने ललकार दिया।

'महमूद!' उसने देखा कि तम्बूके दरवाजेसे चिपककर रोशन बाहर खड़ी है। शायद उसने अपने अब्बाकी और उसकी बातें सुन ली हैं। कुर्त्तेका एक किनारा पकड़कर खींच लिया था उसीने। 'मेरे अब्बाका लिहाज—' उसका गला भरा था। चुपचाप रोती खड़ी रही वह।

'पगली है तू!' उसने अपने हाथोंसे आँसू पोंछ दिये। दोनों साथ-साथ खेले हैं और अब भी साथ-साथ बकरियाँ चराते हैं। रोशनसे पूछकर ही महमूद उसके

अब्बासे कहने गया था कि वह अपनी लड़कीका निकाह कर दे उसके साथ। 'तू समझती है कि मैं बूढ़ेको मार डालूँगा ?'

'वह खुदकशी कर लेगा।' रोशन जानती है कि पंचायत ही सब छोटे-बड़े झगड़ोंका फैसला करती है। कभी भी महमूदको कबीला छोड़नेको पंचायत नहीं कहेगी। उसकी ललकार कबीलेके कायदेके मुताबिक मंजूर होगी। बूढ़ा सरदार अगर हारा तो एक साधारण अरबकी तरह रहनेके बदले मरना ज्यादा पसंद होगा उसे और अगर जीता तो महमूद···। दोनों हालतें खतरनाक थीं उसके लिये।

'तेरा अब्बा कारूँका खजाना चाहता है।' महमूदने थोड़ी देर सिर झुकाकर सोचा। 'मैं वही दूँगा उसे। पंजायत न बुलाऊँगा। उसे कह देना, मैंने उसका हुक्म कबूल किया।' आंखें उठाकर रोशनकी ओर देखनेकी भी जरूरत नहीं समझी उसने। एकदम मुड़ा और चला गया। रोशन पुकार भी तो नहीं सकी। देखती रही वह उसकी ओर। देखती रही तबतक, जबतक वह दिखायी देता रहा और फिर सिर पकड़कर बैठ गयी सिसकियाँ लेते हुए।

(२)

'कारूँका खजाना कहाँ है ?' बढ़ी हुई दाढ़ी, फटे मैले कपड़े, शरीरकी एक-एक हड्डी गिनी जा

सकती थी। कोई बहुत गरीब अरब मुफ्तीकी कदमबोसी करके उनके कदमोंके पास जमीनपर घुटनोंके बल बैठा हुआ पूछ रहा था।

'तुम कहाँसे आये हो?' मुफ्तीको उसके भोलेपन-पर हँसी नहीं आयी। उसकी गड्ढेमें घुस गयी आँखें किसीको भी हँसने नहीं दे सकतीं। दयापरवश मुफ्ती पूछ रहे थे।

'बहुत दूर—बहुत दूर मेरे मालिक। मैं यन्नान कवीलेका हूँ मुझे वहाँसे चले इतने दिन हो गये कि मैंने पूरे छः चाँद देखे रास्तेमें।' दिनको गिननेका कोई तरीका नहीं था उसके पास। महज पूर्णिमाके चाँदसे उसने कुछ अंदाज कर लिया था।

'ओह, इतनी मेहनत काबाशरीफके लिये।' मुफ्तीकी आँखें भर गयीं। उन्होंने युवकको बड़े आदरसे देखा। 'काबिल तारीफ है तुम्हारी मेहनत। खुदा तुम्हारा जरूर खयाल करेगा।'

'सो कुछ नहीं मेरे मालिक।' युवकने फिर सिर झुकाया। 'मैं हज करने नहीं आया। वैसे मैंने दरबारे-शरीफमें बोसा दे लिया है और इस नालायकको आबे-जमजम भी नसीब हो चुका है।' मुफ्तीके लिये यह बताना जरूरी नहीं है कि गरीब-से-गरीब भिखमंगा मुसलमान भी जब मक्काशरीफ़ करने निकलता है तो 'बोसा' और 'आबेजमजम' की फीस तो जरूर उसके पास होती है। अपना पेट काटकर भी वह उसे मुहय्या कर लेता है।

'फिर तुमने इतनी बड़ी तकलीफ किस मसलहतसे उठायी ?' मुफ्तीको ताज्जुब था इस फटे हाल अरब-पर। उनका खयाल था कि महज मजहबी जोश ही आदमीको इतनी बड़ी आफत सहनेकी ताकत दे सकता है।

'मेरा बूढ़ा ऊँट रास्तेकी आखिरी मंजिलपर दम तोड़ गया। मुझे तीन-तीन दिनतक पानी भी नसीब नहीं हुआ। बहुत थोड़े नखलिस्तान पड़े मेरे रास्तेमें।' नखलिस्तानोंके अरब हज करनेवालोंकी खातिर करते हैं और रास्तेके लिये पानी, खजूर वगैरह साथ दे देते हैं, यह कोई बतलानेकी बात नहीं थी।

'आखिर तुम चाहते क्या हो ?' मुफ्तीने अपने कुतूहलको दबाया नहीं। दूसरे अरब सरदार जो पास बैठे थे, वे भी काफी उकता चुके थे और सुन लेनेकी जल्दी उन्हें भी थी।

'कारूँके खजानेके लिये ! मैंने उसीको पानेके लिये इतनी मुसीबत उठायी है।' युवकने फिर कदम-बोसी की। 'मैं जानता हूँ मेरे मालिक कि आपसे दुनियाँकी कोई बात छिपी नहीं। आप ही मुझे बता सकते हैं कि वह कहाँ है।'

'कोई नहीं जानता कि वह कहाँ है ?' युवकको मजहब-परस्तीकी वजह जो आदर मुफ्तीके मनमें उसके लिये हो गया था, एकदम दूर हो गया। अरबोंने मुख फेरकर हँसनेकी कोशिश की। मुफ्तीने यह भी नहीं सोचा कि उसको सर्वज्ञ माननेकी जो धारणा दूरके अनपढ़ कबीलेवालोंमें है, उसको वह इस जवाबसे खत्म

कर रहा है।

'आप जानते हैं—आप जरूर जानते हैं मेरे मालिक।' युवक फिर कदमोंपर माथा रगड़ने लगा। वह फूट-फूटकर रो रहा था।

'कोह काकेशशमें कहींपर।' मुफ्तीने कहानियोंमें जो सुन रक्खा था, बतला दिया। 'ठीक पता उसका कोई नहीं जानता। मैं भी नहीं। अगर उसका ठीक पता किसीको होता तो क्या वह अब भी कहीं जमीनमें छिपा रहता? उसे निकाल न लिया गया होता?' उसे इस मूर्ख युवकके भोलेपनपर हँसी आ रही थी और लालची-पनपर गुस्सा था।

'तब वह किसे मिलेगा?' अरबने किसीकी हँसीका खयाल नहीं किया।

'जिसे खुदा दे।' मुफ्ती ऊब चुका इस गंदे अरबसे।

'जरूर तब वह मुझे देगा।' अरबने फिर कदम-बोसी की और उठकर खड़ा हो गया। उसने यह भी नहीं पूछा कि कोह काकेशश है किस ओर?

(३)

'ओह, इतना लंबा कोह काकेशश!' आज जब वह अपनी मंजिलपर पहुँचा तो उसका दिल बैठ गया। रास्तेकी मुसीबतोंकी परवा नहीं की थी उसने। लगभग समुद्रके किनारेके शहरोंमें होता यहाँतक पहुँचा था और उसकी मुसीबतोंका अंदाज आप भी नहीं कर

सकेंगे। मक्कासे पैदल, बिना एक छदाम लिये काकेशश-की तराईतक। आदमीको यदि सच्ची 'धुन' हो तो नामुमकिन कुछ नहीं।

'यहाँसे कई सौ मील ऊपर जाकर यह कोहकाकसे मिल जाता है।' पूछनेपर एक शख्सने उसे बतलाया था। 'बहुत चौड़ा है। लगभग दो सौ मील चौड़ा। इतना ऊँचा-नीचा है कि तुम इसे सीधे पार करना चाहो तो बहुत थोड़ी खास-खास जगहोंसे ही कर सकते हो।' बतलानेवालेको क्या खबर कि उसका बयान सुननेवालेके दिलपर क्या गुजर रही है।

'ठीक पता उसका कोई नहीं जानता।' मुफ्तीके इन लफ्जोंकी असलियत आज उसके दिमागमें शक्ल बनकर खड़ी हो गयी थी। 'मैं पूरी उमर नहीं ढूँढ़ सकता। काकेशशको एक सिरेसे दूसरे सिरेतक पूरा-पूरा देख डालना किसी फरिश्तेके लिये ही मुमकिन हो सकता है।' अब भी वह नहीं समझ सका था कि खजाना कहीं बाहर नहीं पड़ा होगा। उसके लिये काकेशशको पूरा खोदना होगा। पता नहीं कितनी गहराईतक।

बैठ गया वह वहीं एक पत्थरपर। रास्तेकी सारी थकावट जैसे आज इकट्ठी आकर उसपर लद गयी। सारी मुसीबतें, जिनको उसने तिनकेसे भी छोटी मान-कर ठुकरा दिया था, जैसे आज उससे पूरा बदला वसूल कर लेंगी। सिर चकराने लगा था। देहमें कँपकँपी जान पड़ती थी। बड़े जोरसे खाँसने लगा था वह।

'नहीं, अब नहीं चल सकेगा वह' अब उसमें एक

कदम भी चलनेकी ताकत नहीं है। यहीं—इसी चट्टान-पर............। अब वह इसपरसे उठ भी नहीं सकेगा।'

बड़ा भय लग रहा था उसे।

'उसका यन्नान कबीला। हँसते, खेलते, लंबे तगड़े साथी। उसकी बकरियाँ। छोटे-मोटे टीले। वह खूब-सूरतीकी पुतली रोशन। बूढ़ा खूसट सरदार। सरदारका बिगड़ना। तम्बूके बाहर आँखोंमें आँसूभरे वह सदाकी हँसती-खेलती, शरारती लड़ती गुमसुम बनी। उसका बूढ़ा 'अंट'।' एक-एक कर तस्वीरें सामने आती जा रही थीं। वह चट्टानपर लेट गया था और आँखें बन्द कर ली थी। प्याससे गला सूख रहा था। चमड़ेके थैलेमें पानीकी एक बूँद नहीं थी और होती भी तो उसमें उठकर खुद पानी पीनेकी ताकत कहाँ रह गयी थी आज। वह अब बैठ भी कहाँ सकता है।

'रास्तेके नखलिस्तान। कबीलेवालोंकी खातिरदारी। जईफोंकी दुआएँ और हमजोलियोंका साथ न दे सकने-का अफसोस। जईफ औरतोंकी सलाहें। मक्काशरीफ, काबेका बोसा। मौलवी-मुल्लोंकी पैसोंके लिये छीना-झपटी। डाँट-फटकार।' बेतादाद तस्वीरें उसके सामनेसे गुजर रही थीं।

'जिसे खुदा दे।' मुफ्तीकी तस्वीर आखिरमें आयी सामने। कितना आबरूदार है मुफ्ती। लेकिन आखिरी कलाम मुफ्तीका दिमागमें आते ही वह चौंककर उठ बैठा। उसमें पता नहीं कहाँसे ताकत आ गयी। प्यास पता नहीं कहाँ रफूचक्कर हो गयी। पता नहीं उसके

बदनके किस कोनेमें जिंदगीका यह जोश छिपा था।

'मुफ्ती झूठ नहीं बोलता।' उसके पास मुसल्ला कहाँ रक्खा था। उसी चट्टानपर उसने अपने फटे-फटाये चद्दरको बिछा दिया। 'जरूर खुदा ही उस खजानेको दे सकता है।' अब भी उसे याद था वही जवाब जो चलते वक्त उसने मुफ्तीको दिया था। अपने जवाबपर उसे अब भी पूरा यकीन है। कोई वजह नहीं कि वह अपना इतमीनान खो दे। जब खुदाको ही देना है तो वह कहीं भी दे सकता है। पता भी बतला सकता है। जोशके मारे बिना वजू किये ही नमाज पढ़ने खड़ा हो गया। पानी कहाँ था वहाँ वजू करनेको ?

(४)

'तेरा जलवा बेशुमार है !' कौन गिनने बैठा था वहाँ कि वह दिन-रातमें कितनी नमाजें अदा करता है। बिना रुके, बिना दूसरी बात सोचे वह बराबर एकके बाद दूसरी नमाज पढ़ता जा रहा था। 'तेरे दरबारमें कोई कमी नहीं है और न तेरे लिये कोई मुश्किल है। तेरा यह सबसे छोटा गुनहगार गुलाम कारूँ-का खजाना माँगता है। महज कारूँका खजाना। मेरे मालिक ! मेरी दुआ कबूल कर।'

उसकी आँखें इतना पानी बहा चुकीं थीं कि उनमें अब एक बूँद पानी नहीं बचा था। उसके चमड़ेके थैलेकी

तरह वे खुश्क हो चुकी थीं। भूख-प्यास-नींद—इनकी हिम्मत नहीं थी कि खुदाकी परश्तिशमें लगे इस बंदे-की छाया भी वे छू सकें। हर नमाजकी आखिरी दुआ जब वह दोनों हाथोंको इकट्ठा करके हथेली फैलाकर माँगते हुए ऊपर मुख उठाता था, तो जान पड़ता था कि उसकी नजरोंसे सातों आसमान फट जायँगे। वह सातवें आसमानका मालिक जरूर कूद पड़ेगा उसकी इन नजरोंसे मजबूर होकर।

आज उसे पूरे नौ दिन हो चुके हैं। नमाज़के लिये उठना-बैठना भी अब मुश्किल होता जा रहा है। आखिर बिना खाये-पिये जिस्म कहाँतक बदस्तूर काम कर सकता है। हाँफ जाता है वह हर बार उठनेमें। बैठनेपर उठना दूभर हो जाता है और खड़े होनेपर पैर काँपने लगते हैं। सिरमें चक्कर आने लगता है। बड़ी दिक्कत होती है झुककर खड़े होनेमें। लगता है कि वह सामनेकी ओर लुढ़क जायगा।

नहीं उठ सका—आखिर जब आफताब उसकी नवें दिनकी शामकी नमाजका गवाह होकर कोहकाकके पीछे जा छिपा, तब वह फिर नमाजके लिये किसी तरह उठ न सका। माथा जमीनमें टेकते ही बेहोश हो गया। जैसेका वैसे ही पड़ा रहा। उस सुनसान जगहमें कौन था जो उसकी खोज-खबर लेता। इन नौ दिनोंमें कोई चरवाहा भी उधरसे नहीं निकला था।

'अक्खाह' पता नहीं कितनी देरपर उठाया था उसने सिर। कहींसे उसी वक्त मुर्गेने बाँग दी। शायद

वह बाँग उसके कानोंतक नहीं पहुँची। वह ठहाकेपर ठहाके लगाता जा रहा था। पेट पकड़कर हँस रहा था। क्या पागल तो नहीं हो गया।

पता नहीं कहाँसे फिर बदनमें ताकत आ गयी। पता नहीं अभी कहीं उस हड्डियोंके ढाँचेमें यह ताकत छिपी थी या कहींसे किसीने उसमें जान फूँक दी थी। मामूली ताकत नहीं थी वह। वह हँसते हुए चट्टानसे नीचे खड़ा हो गया और एक कोना दोनों हाथोंसे पकड़कर चट्टान उसने दूर फेक दी।

बड़े खूबसूरत जीने नीचे जा रहे थे। किसी तहखाने-का दरवाजा निकल पड़ा था। उसमें नीचे चाहे जो हो, जीनोंपर किसी चमकीली चीजकी काफी रोशनी थी। उस अँधेरी रातमें भी जीने चमक रहे थे। वह जीनोंसे नीचे उतर पड़ा।

'मैं भी कितना नालायक हूँ।' वह कुल आधे घंटेमें ही ऊपर आ गया और चट्टान उठाकर उसने फिर जीनों-के ऊपर पहले जैसे ही रख दी। 'माना कि उसमें बहुत बड़े-बड़े, बहुत चमकीले पत्थरोंके ढेर हैं। पत्थर ही तो हैं वे सब। मेरे मालिक! तूने अपने नापाक बन्देकी दुआ कबूल की और उसे बताया। कौन कहता है कि मैंने ख्वाब देखा था। ये पत्थर, जीने क्या ख्वाब हैं? लेकिन तूने इसे छिपाया है—छिपा ही रहने दे इसका। तेरे बन्दे-को अब तेरी दुआके अलावा कुछ नहीं चाहिये। भाड़में जाय कारूँ और दोजखमें जाय उसका यह खजाना। खूब, शैतानने भी मुझे खूब बेवकूफ बनाया।'

अब कहनेको बहुत कुछ नहीं रह गया है। कोह-काकेशशमें वह पागलोंकी तरह घूमा करता है। मुझे नहीं मालूम कि वह खाता क्या है। कभी-कभी चरवाहे उसे खजूर या रोटी जरूर खिला देते हैं। रोजा वह रखता है कि नहीं, कौन बतावे, लेकिन नमाज तो उसे पढ़ते कभी देखा नहीं गया। कौन पूछे उससे कि कारूँके खजाने-को लेकर कब लौटेगा वह। पूछनेपर भी क्या वह जवाब देगा? उसने तो बोलना एकदम बंद कर दिया है।

ज्ञानी

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्ति इत्थम्भूतगुणो हरिः ॥

'तुम काश्मीरसे स्वास्थ्य सुधार आये ?' श्रीस्वामीजीने समीप बैठे एक हृष्ट-पुष्ट सम्भ्रान्त नवयुवकसे पूछा ।

'जी, अभी परसों ही घर लौटा हूँ। लगभग छः महीने लग गये वहाँ। बड़ा रमणीक प्रदेश है।' युवक सम्भवतः बहुत कुछ कहना चाहता था ।

'सो तो है, किन्तु' स्वामीजी वहाँके सौष्ठवका गुणगान सुननेको तनिक भी उत्सुक नहीं थे। उनका स्वभाव नहीं है इधर-उधरकी बातोंमें लगनेका। 'यह छः महीनेका श्रम, अहर्निश शरीरकी सेवा, निरन्तर स्वास्थ्यका ध्यान, क्या फल है इसका ? वर्षोंका श्रम एक क्षणमें नष्ट हो जाता है। क्या दशा हो इस काश्मीरप्रवासके छः महीनेके सुपरिणामकी, यदि केवल एक दिन कसकर ज्वर आ जाय ?' युवकने मस्तक झुका लिया। वह सिहर उठा था।

'डरो मत ! मैं न कोई शाप दे रहा हूँ और न भविष्यवाणी कर रहा हूँ। केवल एक बात कह रहा हूँ।' युवककी भीतमुद्रा महात्मासे छिपी न रही। 'जिसपर ज्वरका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जो कभी अस्वस्थ नहीं होता, वस्तुतः वही तुम्हारा स्वरूप है।'

'जी इस शरीरका क्या ठिकाना। आज है तो कल नहीं।' एक सेठजीने, जो बहुत समीप ही बैठे थे, बड़ी नम्रतासे बात आगे चलायी। 'इसके द्वारा तो जो कुछ पुण्यकार्य हो जाय, वही थोड़ा है।'

'आप प्रसिद्ध दानी हैं। आपका सुयश बहुत व्यापक है।' स्वामीजीने सेठजीके आत्म-प्रशंसा-प्रयत्नको लक्षित कर लिया था। 'यश धर्मके द्वारा ही प्राप्त होता है, अतः वह दूसरी कामनाओंसे श्लाघ्य है।'

'मैं कहाँ कुछ कर पाता हूँ।' कोई भी समझ लेता कि सेठजीकी यह नम्रता स्वाभाविक नहीं है।

'मैं दूसरी बात कह रहा था। यशका सम्बन्ध भी स्थूल शरीरसे ही है।' स्वामीजीका स्वभाव हो गया है, प्रत्येक बातको घुमा-फिराकर अध्यात्मचर्चाका रूप दे देना। 'मरनेपर क्या सम्बन्ध रहेगा तुम्हारा इस सुयश-से ? तुम कह सकते हो कि पिछले किसी भी जन्ममें तुम्हीं नेपोलियन, राणा प्रताप या दूसरे कोई विख्यात पुरुष नहीं थे ? क्या सुख देती है तुम्हें वह पूर्व प्रख्याति ? किसका सुयश और किसका कुयश ? सभी यश-अपयश तुम्हारे ही तो हैं। जो परम प्रख्यात, एक एवं अविभाज्य है, उसको यश या अयश देगा भी कौन ?'

'घनन, घनन' मन्दिरकी घण्टी बज उठी। बड़ा घण्टा बजाया जाने लगा। नगाड़ेपर चोप पड़ी और पुजारीने मन्दिरका पर्दा हटा दिया भीतरसे। दक्षिण हाथमें आरतीका प्रदीप एवं वाममें घण्टी लिये वह खड़ा था मूर्तिके समीप। 'श्रीबाँकेबिहारीलालकी जय !' सबसे

पहले स्वामीजी ही उठ खड़े हुए थे दर्शनार्थ। वस्तुतः तो सभी दर्शनार्थ ही आये थे। मन्दिरके पट बन्द होनेके कारण प्रांगणमें ही बैठ गये थे और स्वामीजीसे बातचीत प्रारम्भ हो गयी थी।

'बड़े विचित्र हैं ये स्वामीजी भी।' बाहर आते ही एकने कहा। स्वामीजी तो अभी भी दर्शनार्थियोंमें सबसे पीछे खड़े थे और पट बन्द होनेके भी दो-चार क्षण पश्चात्तक खड़े रहेंगे। उनका तो यही नित्यनियम है। 'बातें तो बड़ी गम्भीर करते हैं। तत्त्वज्ञानसे नीचे बोलते ही नहीं और मन्दिरसे बच्चोंकी भाँति आँसू बहाते खड़े हैं।' सम्भवतः स्वामीजीको उन्होंने प्रथम बार देखा है।

'वे केवल रोते ही नहीं, खूब कूद-फाँदकर नाचते भी है।' दूसरेने गम्भीरतासे ही कहा। 'उनकी कुटियापर कभी कीर्तनके समय आप पधारें तो देखेंगे। यह ब्रज है भाई साहब! यहाँकी वायुमें वड़े-बड़े बह जाया करते करते हैं। आप अभी नये-ही-नये आये हैं यहाँ।' दोनों साथ-ही-साथ आगे निकल गये।

(२)

दर्शक चौंक पड़े थे। छोटी-मोटी भीड़ने उन्हें आवृत कर लिया था। सबको आश्चर्य था कि नित्य सबके पीछे शान्त खड़े अश्रु बहानेवाले महात्मा आज इस प्रकार क्यों अट्टहास कर रहे हैं। क्यों इस प्रकार लोट-

पोट हो रहे हैं। आज न तो वे भगवद्विग्रहको प्रणाम करते हैं और न उठकर खड़े ही होते हैं। पागल तो नहीं हो गये।

स्वामीजीने श्रीयमुनाजीके किनारे एक झोंपड़ी डाली थी। आज तो भक्तोंने उसे भव्य भवन बना दिया है। चारों ओर पुष्पित उपवनसे आवृत हो गया है उनका 'गोविन्द-निवास।' आज कई वर्षसे वृन्दाबनकी सीमासे बाहर नहीं गये हैं वे।

वेदान्तके वे विख्यात आचार्य हैं। उनके लिखित ग्रन्थोंकी पंक्तियाँ दूसरे बड़े-बड़े विद्वान कठिनतासे लगा पाते हैं। न्याय तो जैसे उन्हींके मुखसे बोलता है और योगकी क्रियाएँ उनसे भली प्रकार यहाँ कौन समझा सकता है? कर्मसिद्धान्त, व्याकरण, साहित्य, कोई भी विषय ऐसा नहीं, जिसमें कोई स्वामीजीकी शिष्यताका भी ठीक-ठीक गर्व कर सके। भगवती मरालवाहिनीने इस युगमें उनको ही चुना है अपने वरदहस्तका अधिकारी। ऐसा उद्भट एवं प्रख्यात विद्वान्, नैष्ठिक वीतराग इस प्रकार मन्दिरमें हँसते-हँसते लोट-पोट हो, पागल नहीं तो और क्या कहा जाय उसे?

'मैं हूँ, मैं हूँ, मैं ही हूँ!' आत्मचिन्तन अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया। इन्द्रिय-निग्रहका प्रश्न ही व्यर्थ था। मन केन्द्रपर एकाग्र हो गया। बुद्धिने मनसे एकात्मता प्राप्त कर ली। शरीर विस्मृत हो चुका था और तब दृश्य की चर्चा करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती।

स्थिर आसनपर पर्याप्त समय बीत चुका था। प्राणोंकी गतिको मनकी स्थिरताने ठप कर दिया था। आप उसे धारणा-ध्यान तथा समाधिका एकीकरण कह सकते हैं। जैसे एक तरङ्गायमान तत्त्व है। आकृतियाँ तरङ्गोंका रूपमात्र हैं। तरंगें सीधी होती गयीं और अन्ततः एक स्थिर, शान्तस्थिति थी। उसके पश्चात् । वह भी नहीं कह सकते कि उसके पश्चात् क्या हुआ। क्या स्थिति रही।

धीरे-धीरे नेत्र खुले। सम्मुख हँसती हुई ललित-त्रिभंगी मूर्ति विराजमान थी। मध्यके दर्शकोंपर दृष्टि गयी ही नहीं। जैसे आज दर्शकोंकी सत्ता ही नहीं थी। थी वह शरारतभरी मुसकराती मूर्ति और पूर्णतासे उत्थित हुए वे। आज कुछ अधिक पहले दर्शनार्थ आ गये थे स्वामीजी। उस समय मन्दिर-प्रांगणमें कोई भी नहीं आया था। सामनेके बरामदेमें ठीक मन्दिरके द्वारके सम्मुख बैठ गये आसन लगाकर। न बिछानेको आसनकी आवश्यकता हुई और न कोई उपकरण। नेत्र बन्द हो गये अपने-आप।

'त्वमेवेदं सर्वम्' जैसे मूर्ति बढ़ रही थी, बढ़ती जा रही थी। सम्पूर्ण अनन्त विराट् उसने अपनेमें अन्तर्हित कर लिया ; 'रोम-रोम प्रति राजहिं कोटि-कोटि ब्रह्मांड।' उसमें साकार हो उठा। नहीं—यह सब कुछ नहीं। न ब्रह्माण्ड और न ब्रह्माण्डकी विशेषता। केवल वही-वही—एकमात्र वही। नेत्र खुले थे; किंतु संन्यासी स्तब्ध हो

गये। मूक —चेष्टाहीन।

'क्या निर्वाण तो नहीं लेंगे स्वामीजी यहीं ?' लोगोंमें हलचल मच गयी। फटे-फटे नेत्र, जडवत् शरीर। स्वामीजीकी इस स्थितिने लोगोंको भयभीत कर दिया।

'नाहं न मे' धीरे-धीरे पलकें हिलीं। शरीरमें चेतनाके लक्षण प्रगट हुए। कुछ बड़बड़ा रहे थे स्वामीजी। 'मैं ही हूँ और मैं नहीं, केवल तू ही है। बड़ा सुन्दर है तब तो। हम दोनों मित्र है। अभेद ही तो मित्रत्व है।' वे ठठाकर हँस पड़े।

'सुहृदं सर्वभूतानाम्' वह मन्दिरका देवता तो जाने कबका स्वीकार कर चुका है। स्वामीजीने फिर कह-कहा लगाया 'बड़ा प्रसन्न हुआ होगा वह ऋषि, जिसने समाधिमें वेदमन्त्रका अर्थ स्पष्ट किया होगा।' एक क्षण रुक गये वे। दूसरे ही क्षण उनका कण्ठ सस्वर था—'द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ।'

(३)

जय कन्हैया लालकी। गिरधर गोपालकी॥

एक चमचमाते थालमें ढेरों बत्तियाँ जलायी गयी थीं। मध्यमें कपूरकी सुगन्धित लपटें उठ रही थीं। दाहिने हाथपर ऊपरसे नीचे नाच रहा था थाल। स्वामीजीका नृत्य उद्दाम हो गया था। उत्तरीय गिर चुका था कौपीनके ऊपरका अधोवस्त्र। केवल कौपीन पहिने वह कुछ स्थूलकाय, मुण्डित मस्तक, गौरवर्ण, तेजमूर्ति थिरक

रहे थे। नेत्र जैसे छतकी ओर किसीको देख रहे थे। उनसे आनन्दाश्रु चल रहे थे। प्राङ्गणकी भीड़ कभी इधर, कभी उधर हट-बढ़ रही थी। उन्हें भीड़का सम्भवत: भान भी नहीं था।

आज जन्माष्टमी थी। कई दिनोंसे प्रतिवर्षकी भाँति स्वामीजीके यहाँ महोत्सवकी प्रस्तुति हो रही थी। केलेके खम्भोंपरकी चित्रकला संगमरमरकी भ्रान्ति उत्पन्न कर रही थी। मोगरेके फूलोंसे पूरा मन्दिर ही बना डाला गया था। पर्याप्त दर्शनार्थी आ गये थे जन्मके समय।

पूर्वदिशामें अनुराग बिखर गया। निशीथका ठीक समय आ पहुँचा। कुमुदकान्तकी प्रथम किरण क्षितिज पर थिरक उठी। साथ ही यमुना किनारे एक धड़ाका हुआ। जैसे मन्दिरकी वह पीतयवनिका फट गयी हो। पर्दा हटानेमें सीमाकी स्फूर्ति प्रदर्शित की पुजारीने।

बाहर शहनाईका मधुर स्वर गूँज रहा था। मन्दिरमें घण्टा, घड़ियालके शब्दको दबाकर अष्टादश शङ्ख अपने निनादसे सम्भवत: सृष्टि संलग्न स्रष्टाको उनके ब्रह्मलोक-में भी सूचित करने दौड़ा जा रहा था पितामह, कन्हैया-के जन्मका समय आ गया। एक क्षणको अपने व्यस्त हाथ रोकिये और आप भी ताली बजाकर गाइये तो सही 'जय कन्हैया लालकी।'

ब्राह्मणोंने वेदध्वनि प्रारम्भ की। दुग्धाभिषेकके अनन्तर सहस्त्र तुलसीदल समान्त्रिक चढ़ाये गये। षोड-शोपचार पूजन हुआ। अन्तमें पुजारीने आरती की। नीराजनका थाल लेकर दर्शकोंको आरती देने मन्दिरसे

बाहर निकाला था वह। अबतक स्वामीजी एकटक मन्दिरमें पलनेकी ओर देख रहे थे। सहसा आगे बढ़े और पुजारीसे थाल ले लिया उन्होंने।

'ओह ! आपकी तो पूरी हथेली ही फफोला हो गयी है।' प्रसाद वितरण हो चुका था। रात्रि जागरण करना ही था और भजनीकोंके तबलेकी खुट-खुट अभी घंटेभरसे कम समय न लेगी। सितारके कान ऐंठते भी समय लगेगा ही। स्वामीजीको घेरकर कुछ लोग बैठ गये थे। 'अंगुलियोंके फफोले तो फूट गये हैं। आरतीके थालके नीचे एक गमछा भी नहीं रक्खा गया।' दुःखित स्वर था कहनेवालेका। घृत लगाने लगे वे उस दाहिने हाथमें।

'पवित्र हो गया यह मांसपिण्ड।' स्वामीजीको जैसे कोई कष्ट ही नहीं हुआ और न हो रहा था। 'आज जन्माष्टमी है, तुम यदि देख सकते !' उनका कण्ठ भर आया था। अश्रु टपकने लगे थे। नेत्र अधमुंदे हो चले थे।

'तपोलोकमें सब महर्षि ही रहते हैं। बड़ी-बड़ी जटा और दाढ़ियोंवाले महर्षि।' तनिक आश्वस्त होकर उन्होंने कहा। 'चिरशिशु सनकादि चारों कुमार ताली बजाते, उछलते-कूदते सचमुच आज शिशु हो जाते हैं। 'जय कन्हैया लालकी।' सबकी दाढ़ियाँ हिला आते हैं। सबकी गम्भीरता, आत्मनिष्ठा आनन्दमें डूब जाती है। उन पूर्वजोंके पूर्वजोंको कौन रोके ?' एक-एक योगिराज अपने अन्तर्नेत्रोंसे तपोलोकका साक्षात करते होंगे, यह किसीके लिये सन्देहका विषय नहीं था।

'सनकादि तो परम ज्ञानी हैं' मैंने ही शङ्का की।

'तुम क्या समझते हो कि ज्ञानी हृदयहीन होता है?' बड़ी सुन्दर फटकार पड़ी मुझपर। वह आनन्द कल्लोलिनीमें कभी स्नान कर ही नहीं पाता? अरे, तुम्हें इतना भी पता नहीं कि सभी शरीरधारियोंके लिये—फिर वे दिव्य शरीरी हों या भौतिक शरीरधारी, एक ही प्रशस्त मार्ग है—

हिय निरगुन, नयननि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट सम्पुट लसत, 'तुलसी' ललित ललाम॥

(४)

'कोई भी काम निरुद्देश्य नहीं किया जा सकता। कुछ-न-कुछ कामना तो होती है उसके मूलमें।' मेरा समाधान नहीं हो सका था जन्माष्टमीको। उस समय अवसर नहीं था। स्वामीजी भाव-विभोर हो रहे थे। बहुतसे लोग थे वहाँ। मैंने आज दोपहरीका एकान्त अवसर अनुकूल पाया था। स्वामीजी भी स्वस्थ थे। 'ज्ञानी पूर्णकाम होता है। वह कोई भी प्रयत्न क्यों करेगा?'

'तुम चाहते हो कि ज्ञानी भोजन-पान-शयन एवं श्वास-प्रश्वास भी बंद कर दे।' स्वामीजी तनिक हँस रहे थे। 'उसके लिये जीवन अपराध है। उसे मर जाना चाहिये और वह भी मरनेका बिना कोई प्रयास किये। क्यों?' खुलकर हँसना उनके लिये नवीन बात नहीं है।

'मेरा ऐसा उद्देश्य तो नहीं है।' मैं भी गम्भीर नहीं रह सका। प्रकृतिप्रेरित कार्य तो उसके शरीर-द्वारा होंगे हीं; किंतु वे कार्य जो अप्रयास नहीं होते, जिन्हें प्रयत्नपूर्वक करना पड़ता है, जिनके लिये प्रकृति विवश नहीं करती, उनके लिये वे क्यों प्रयत्न करेंगे? विधि-निषेधका बन्धन तो है नहीं उनके लिये और कोई कामना शेष रही नहीं है।'

'ठीक तो हैं। तुमको इसमें पूछना क्या रह गया है!' स्वामीजीने मेरे तर्कको ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया। 'यदि तुम किसी व्यक्तिविशेषकी चर्चा कर रहे हो तो मैंने किसीका ठेका नहीं लिया है और यदि मेरे सम्बन्धमें तुम्हें शङ्का हो तो तुमसे कहा किसने कि मैं ज्ञानी हूँ?'

'मैं किसीकी समालोचना नहीं कर रहा हूँ।' स्वामीजीकी स्पष्टवादिताने मुझे कुण्ठित कर दिया था। 'जब प्रयत्न नहीं किया जाता तो हृदयमें जो कुछ है, मन उसका चिन्तन करता है और वाणी उसीको प्रकट करती है।' मैंने अपना प्रश्न अब भी स्पष्ट न करके भूमिका ही विस्तृत की।

'अच्छा इतना और जोड़ दो कि यदि मनमें उसे चिन्तन करने और वाणीमें उसे प्रकट करनेकी शक्ति हो।' वे खिलखिलाकर हँस पड़े। मैं जो कुछ कहनेवाला था, उसे समझ लिया था उन्होंने। 'भोले बच्चे! तुम गोस्वामी तुलसीदासके वचनोंपर शङ्का करते हो?'

चेतावनीके साथ स्नेह और आत्मीयता थी स्वरमें ।

'मैं केवल समझना चाहता हूँ ।' मैंने सच ही कहा । कुतर्क करना भी चाहूँ तो विवादमें स्वामीजीसे पार पानेका स्वप्न देखना भी मेरे लिये सम्भव नहीं हो सकता ।

'वाणी कोई-न-कोई नाम ही ले सकती है । किसी-न-किसीका गुण दोष ही कहेगी वह । क्यों न वह भगवन्नाम ले और भगवान्का ही गुण गाये, यदि उसे मौन नहीं रहना है ।' गम्भीर थी वह वाणी । स्थिरदृष्टि जैसे सीधे हृदयतक जाकर उसे पढ़ रही थी । 'नेत्र व्यक्तिको ही देखेंगे और तब मायिकको देखनेके बदले वे अमायिक सगुण-साकारके दर्शनार्थ क्यों न समुत्सुक बनें ?' एक क्षणका रुक गये कुछ सोचते हुए ।

'निर्गुण तो हृदयकी ही वस्तु है । उसका तो केवल अनुभव हो सकता है ।' फिर वही सुशान्त वाणी गूँजी । 'मन बिना कुछ सोचे तो रहेगा नहीं । निर्गुणको भला क्या सोचेगा वह । विश्व एवं विषयोंके चिन्तनसे तो यही परम श्रेष्ठ है कि वह लीलामय, सकल गुणगणार्णवकी दिव्य लीलाओं, परमपावन गुणोंका चिन्तन करे ।'

'क्या श्रेष्ठ है और क्या निकृष्ट, क्या चाहिये और क्या नहीं चाहिये, यह एक आप्तकाम आत्माराम सोचे ही क्यों ?' मैं समझ रहा था कि सम्भवत: जिज्ञासा हठधर्मीका रूप लेती जा रही है । फिर भी प्रश्न तो हो ही गया । 'ज्ञानीके नेत्र जो चाहें सो देखें । मन जो चाहे सो सोचे ।'

'वही तो होता है।' स्वामीजी भावजगत्में पहुँच गये। 'माया तो उससे भीत होकर भाग जाती है। प्रकृति उसे प्रेरित नहीं करती। उसे वह चीर-चोर प्रेरित करने लगता है। उसकी स्वतःचालित गति सर्व-सामान्यसे भिन्न हो जाती है।' मुझे स्मरण आया—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते

'हमारा काम बहुत शीघ्र प्रगति करेगा।' बात यह है कि कार्यारम्भमें ही आशासे अधिक सफलता मिली थी और इस सफलताने श्रीबद्रीप्रसादजीको उल्लसित कर दिया था।

'ग्राम-संगठनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता।' आजसे एक सप्ताह पूर्व बद्रीप्रसादजीने अपने एक मित्रके साथ मिलकर योजना बनायी। 'हम दोनों इस ओर लग जायँ तो कार्य बहुत बड़ा नहीं है।'

'पहिले एक ग्रामका संगठन हाथमें लेना होगा।' मित्रने सलाह दी।

'गाँवके लोग अपने खेत-खलिहानको छोड़कर दूसरी बातोंमें रुचि ही नहीं लेते।' बद्रीप्रसादजीने कहा। 'अगले मङ्गलसे प्रतिदिन अपने यहाँके हनुमान्जीपर शामको रामायण-गान प्रारम्भ किया जाय और रामायणके अन्तमें लोगोंको संगठनके लिये समझाया जाय।'

'आपके गाँवसे श्रीगणेश करना रहेगा तो उत्तम।' मित्रसे कहा। 'यहाँ आपका प्रभाव अच्छा है और कुछ उत्साही युवक भी हैं। जो कार्य-कर्ताके रूपमें मिल जायंगे। स्थान है ही आपके पास तथा प्रारम्भमें व्यय भी कुछ पड़ना नहीं है।'

'रामायणकी कथाके नामपर लोग एकत्र हो जायँगे।' बद्रीप्रसादजीका सोचना ठीक ही था। 'कथा-कीर्तनके लिये प्रसादकी व्यवस्था भी लोग सहर्ष कर देंगे और उतनेसे अभी काम चल निकलेगा।'

गाँवमें रामायणकी कथाके प्रति आदर-भाव है। कभी-कभी लोग मङ्गलवारको हनुमान्‌जीके पास एकत्र होकर रामायण गाते भी है। बड़ा पवित्र मनोविनोद है यह ग्रामके भोले कृषकोंका।

आप जानते ही हैं कि अर्थकी प्रधानता अब गाँवोंमें भी अपना प्रभाव बढ़ाती जाती है और ग्रामीणोंकी सरलता, श्रद्धा, ईमानदारीको वह धीरे-धीरे निगलती जा रही है। रातमें कोई पशु न खोल ले जाय, खेत चरा न ले, खड़ी फसल चोर न काट लें—इस प्रकार खेत, खलिहान और घरपर कृषकको सदा सचेत रहना पड़ता है। उसके पसीनेकी कमाईपर उसीके सहचरोंकी आँखें रात-दिन लगी हैं। मार-पीट, थाना-कचहरी बराबर चलता रहता है।

'यह सब बंद होना चाहिये।' बद्रीप्रसाद तथा उनके मित्र अभी युवक हैं। उनके रक्तमें यौवनकी उष्णता है। 'यह होना चाहिये।' इसके आगे वे सोचना नहीं चाहते कि वैसा होनेमें कितनी बाधाएँ हैं। युवकका ओज बाधाओंकी गणना करना पसन्द नहीं करता।

'ग्रामके लोग संगठित हो जायँ,' बद्रीप्रसादजीने मित्रसे कहा, 'तो सारी घूसखोरी, सारी लूट-खसोट और न्यायालयोंकी पूरी धाँधली समाप्त हो जाय।'

'हम ग्राम-संगठन कर लें—भले वे चार गाँव ही हों।' मित्रका रोष नेताओंपर था ; क्योंकि उनके सुहृद् इन बद्रीप्रसादजीको चुनावमें काँग्रेस-टिकट मिला नहीं था। 'तो इन नेताओंका सिर अपने आप ठिकाने आ जायगा।'

'उनकी चिन्ता कौन करता है।' बद्रीप्रसादजीको भी संगठनकी बात टिकट न मिलनेकी प्रतिक्रियाके रूपमें ही सूझी थी। वे यह समझ नहीं सके थे कि देशके उच्च नेता तो चाहते ही हैं कि लोग ग्रामोंमें जाकर जन-सेवा एवं जन-संगठनका कार्य करें।

इस बातको आज सात दिन हो गये। आज मङ्गलवार है। दोनों युवकोंका श्रम सफल रहा है। हनुमान्जीपर रामायण-गानमें तीन चौथाई ग्रामके लोग एकत्र थे। अन्तमें बद्रीप्रसादजीके समझानेपर दस युवक ग्राम-कार्य-कर्ता बननेको प्रस्तुत हो गये। यह अकल्पनीय सफलता थी उनके लिये।

× × ×

'एक बर्षमें यहाँका संगठन-कार्य पूरा हो जायगा।' बद्रीप्रसादजी जी-तोड़ श्रम कर रहे थे। 'लोगोंको खेत-खलिहानकी चोरीसे निश्चिन्तता प्राप्त हो जायगी। वे अपनी बहुत-सी आदत सुधार लेंगे। नशोंके साथ पुलिस तथा न्यायालयको भी यह गाँव नमस्कार कर लेगा।'

गाँवमें काम हो रहा था, यह मानना पड़ेगा।

सरकारके आर्थिक सहयोगसे गाँवकी गलियाँ ईंटोंसे पाट दी गयीं । चार पक्के कुएँ बन गये । बद्रीप्रसादजी स्वयं एक रात्रि-पाठशाला चलाते हैं और एक पुस्तकालय तथा औषधालय भी उनके उद्योगसे स्थापित हो गया है। अधिकांश किसानोंने खादके व्यवथित गड्ढे बना लिये हैं।

'हमारे दस कार्य-कर्ता वर्षभरमें दक्ष हो जायँगे।' मित्रका स्वप्न बहुत बड़ा है। 'उन्हें अगले वर्ष पाँच गाँवोंमें भेजा जा सकेगा और ऐक वर्षमें वे हमें पचास दक्ष कार्य-कर्ता दे देंगे। इस प्रकार प्रतिवर्ष पाँच गुने अधिक ग्राम हम हाथमें ले सकेंगे।'

इस उत्साहमें दोनो मित्रोंको यह दिखायी नहीं पड़ता था कि मनुष्योंके सम्बन्धमें इस प्रकार अङ्क-गणितका हिसाब कभी सच नहीं निकाला है।

दो महीने भी पूरे नहीं हुए थे कि ग्रामके लोगोंका उत्साह शिथिल पड़ने लगा था। बद्रीप्रसादजी और उनके मित्रपर कार्यका भार बढ़ता चला जा रहा था।

'मुझे अपनी बहिनकी ससुराल जाना है।'

'मुझे ज्वर आ रहा है।'

'इस समय तो बीज बोनेकी शीघ्रता है।'

जो कार्य-कर्ता ग्राम-सेवाके लिये प्रस्तुत हुए थे, उनमें एकने भी पूरा समय कभी नहीं दिया—आरम्भके आठ-दस दिन छोड़कर। कभी बीज बोना है, कभी फसल काटना है, कभी खलिहान सम्हालना है। किसानके पास कार्यकी कमी कहाँ है। फिर उसे कभी रिश्तेदारी-

में जाना पड़ता है और कभी घरके किसी सदस्यके रोगी होनेपर उसकी सेवा भी करनी पड़ती है।

कार्य-कर्ताओंने पहले समय देना कम किया, फिर दो-चार दिन लगातार सेवा-कार्यसे अवकाश लेने लगे और अन्तमें एक-एक करके वे सब तटस्थ होते गये।

'उसने मेरा खेत चुरा लिया है। मैं उसे देख लूँगा।'

जहाँ चार आदमी रहते हैं, कहा-सुनी हो ही जाती है। पशु यदा-कदा छूट ही जाते हैं। जो समझदारी एक बार आयी थी, धीरे-धीरे समाप्त होने लगी।

'बद्रीप्रसाद उसका पक्ष करता हैं। वह उससे मिला हुआ है।' जब स्वार्थ या द्वेष बलवान् होता है और सहिष्णुता नहीं रह जाती, मनुष्य अपने हितैषीको भी शत्रु मानने लगता है।

संगठन स्वार्थकी इस चट्टानसे टकराकर टूटता जा रहा था। बद्रीप्रसाद एवं उनके मित्रपर वे लोग आक्षेप करने लगे थे, जिनका स्वार्थ रुकता था या जो अपने मनोऽनुकूल निर्णय कहीं करा पाते थे। इक्के-दुक्के मुकदमे भी प्रारम्भ हुए और उन्होंने फूटको बढ़ानेमें सहायता की।

'हम दोनों कबतक इस गाड़ीको पेल सकेंगे?' अन्तमें बद्रीप्रसादके मित्र हताश होने लगे। उन्हें अपने भीतर स्पष्ट थकावटका अनुभव होने लगा। सच तो यह है कि उनका उत्साह एक स्वप्नको लेकर था—ग्राम, परगाना, तहसील, जिलेके क्रमसे कुछ गिने-चुने वर्षोंमें एक सुदृढ़ अखिल भारतीय किसान-संगठन और

उसका वह सर्वोच्च नेता—इतना महान् स्वप्न जिसका भग्न हो जाय, वह हिमालयके शिखरसे नीचे नहीं गिरेगा ? उसका उत्साह चूर-चूर होकर बिखर जाय तो क्या आश्चर्य।

× × ×

'हम दोनों ही अब यहाँसे बाहर चले जाना चाहते हैं।' बद्रीप्रसादजीने अपने सबसे श्रद्धेय उन वृद्ध कर्मठ महापुरुषसे प्रार्थना की। 'आप कुछ कर सकें तो इस गाँवके लिये भी कीजिये।'

'सेवाका कार्य वही कर सकता है, जिसकी कर्ममें निष्ठा है, जो अपने उद्योगको—अपने श्रमको ही अपना सबसे सुन्दर फल और महान् पुरस्कार मानता है।' उन वृद्धने कहा। 'मेरे बच्चो !'

फलाशाके सुनहले स्वप्न तथा निराशाके प्रबल झोंके, ये दोनों कर्मके राजमार्गके दो ओर हैं। एक उत्तुङ्ग शिखर है, दूसरा गहरा खड्ड—इन दोनोंसे बचकर चलना है तुम्हें।'

'कार्यकर्ता सब-के-सब बहाने बनाकर पृथक् हो गये।' बद्रीप्रसादने स्थितिका स्पष्टीकरण किया। 'जिनके लिये दिन-रात श्रम करते हैं, वे पक्षपाती, स्वार्थी और पता नहीं क्या-क्या कहते हैं।'

'ऐसी स्थितिमें कोई कबतक लगा रहे, यही कहना चाहते हो न !' तनिक हँसे वे वृद्ध। 'सफलता, सुयश

एवं सम्मान तुम्हारा पुरस्कार नहीं है। इन्हें पुरस्कारके रूपमें पानेकी कामना हो तो तुम्हारा सेवाकार्यसे पृथक होना ही अच्छा, अन्यथा तुम्हारे द्वारा अनजानमें ही कुसेवा होने लगेगी, तुम परार्थके स्थानपर स्वार्थ चाहोगे। और जहाँ स्वार्थ है—छल, पार्टीबंदी, असत्य, द्वेष, द्रोह, आक्षेप, हिंसा, प्रतिहिंसा आकर रहते हैं।'

'आप कहना क्या चाहते हैं?' बद्रीप्रसाद गम्भीर हुए। वे समझने लगे थे कि उनसे कहाँ भूल हुई है।

'स्वप्न मत देखो! कर्मिष्ठ व्यक्ति भूमिपर रहता है। वर्तमानसे संतुष्ट और निराश मत हो। यह तो अन्धकूपमें कूदनेके समान है।' वृद्धने भी पूरी गम्भीरता-पूर्वक समझाया। **'तुम जो श्रम, जो उद्योग कर रहे हो—वही तुम्हारा पुरस्कार है।'**

'उस श्रमको नष्ट करनेवाली शक्तियाँ बढ़ रही हैं।' बद्रीप्रसाद की यही मुख्य कठिनाई थी।

'वे तो सदासे हैं। तुम्हारा उत्साह प्रबल था तो वे दीख नहीं रही थीं। उत्साह शिथिल हुआ तो वे ऊपर आ गयीं।' अब वे वृद्ध एक गम्भीर दार्शनिककी भाँति बोल रहे थे। 'देखो, सृष्टिमें बिनाश तो सदा सक्रिय है। उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। एक भवन, एक पदार्थ, एक संस्था या एक अन्तःकरण—किसी एककी सुरक्षा एवं स्वच्छताका प्रयत्न शिथिल कर दो, वह मलिन होता जायगा, क्षीण होता जायगा, नष्ट हो जायगा। नवनिर्माण एवं निर्मितको बनाये रखनेके लिये, स्वच्छताके लिये निरन्तर जागरूक एवं कर्मशील

रहना है। यह कर्म ही हमारा पुरस्कार है।

'जहाँ कर्म जाग्रत् नहीं रहेगा--वह मर जायगा ?' बद्रीप्रसादने पूछा।

'बच्चे ! यह सृष्टि ब्रह्माके संकल्पसे चलती है। वे जब अपना संकल्प त्यागकर सो जाते हैं, यहाँ प्रलय हो जाती है।' वृद्धने सूत्र सुना दिया। 'लोक-मङ्गल हो, आत्मकल्याण हो या और कुछ हो, उसमें प्रयत्नकी निश्चिन्तताका कुछ अर्थ नहीं। जबतक प्रयत्न है, तभी-तक सुरक्षा एवं स्वच्छता है। इसीसे कहता हूँ- भागो मत। कहीं भी जाओगे, सेवामें ये सब बाधायें आयेंगी ही। तुम्हारा कर्ममें ही अधिकार है। कर्मको ही अपना पुरस्कार मानो। उसीमें तुम स्वतन्त्र हो।'

आगे क्या हुआ, पता नहीं। उस दिन तो वे दोनों युवक उत्साह लेकर लौट आये थे।

श्रीकृष्ण - सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण-सन्देश प्रतिमास ८० पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' की सशक्त लेखन-शैलीसे इस पुस्तकके द्वारा परिचित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-सन्देशमें श्रा 'चक्र' द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जा रहा है।

वार्षिक शुल्क— १० रुपया।

आजीवन शुल्क— १५१ रुपया।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—
श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा-२८१००१

चक्र' की अन्य पुस

श्रीकृष्णका मथुरा चरित)—

डिमाइ आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १

...रकाधीश—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—

डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १

पार्थ-सारथि (श्रीकृष्णका महाभारत-चरित)—

डिमाई आकार, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य १०)५२

शिव-चरित—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा—

डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति–डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य—डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—

डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ३)००

साध्य और साधन (साधना, भगवद्दर्शन, गुरुतत्व)—

डिमाई आकार, पृष्ठ ३८४, सजिल्द, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-१— सजिल्द, पृष्ठ ३८३, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-२— सजिल्द, पृष्ठ २७२, मूल्य ८)२५

राम-श्यामकी झाँकी भाग-१ —पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

श्यामका स्वभाव— पाकेट आकार, पृष्ठ ६६, मूल्य १)२५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान—पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२८

हमारे अवतार एवं देवी-देवता—

पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

सांस्कृतिक कहानियां प्रत्येक भाग—

पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

अन्य प्रकाशन—

दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक प्रसंग—

पाकेट आकार, पृष्ठ १८८, मूल्य २)५०

प्रकाशन विभाग, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ,
मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)